योगविद्या

वर्ष 8 अंक 10
अक्टूबर 2019
सदस्यता डाकखर्च – रु 100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरिः ॐ

योग विद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2019

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 58 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर : स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

अन्दर के रंगीन फोटो : अन्तरराष्ट्रीय योग दिवस 2019, पादुका दर्शन, मुंगेर

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

थोड़ा-सा जप करो

किसी मंत्र या भगवान के किसी नाम को दुहराना जप कहलाता है। यह योग का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। जप विषयों की ओर प्रवाहमान विचारों के वेग को नियंत्रित करता है। यह मन को दिव्यता की ओर अग्रसर करता है। जब भी साधक की साधना में रुचि घटने लगती है, मंत्र शक्ति उसकी साधना शक्ति को पुष्ट करती है। मंत्र की निरंतर और दीर्घकालीन आवृत्ति मन-मस्तिष्क में नए संस्कार बनाती है, जो अन्ततः साधक को परम सत्ता का दर्शन और साक्षात्कार कराते हैं।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर-811201, बिहार के लिए स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद-121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

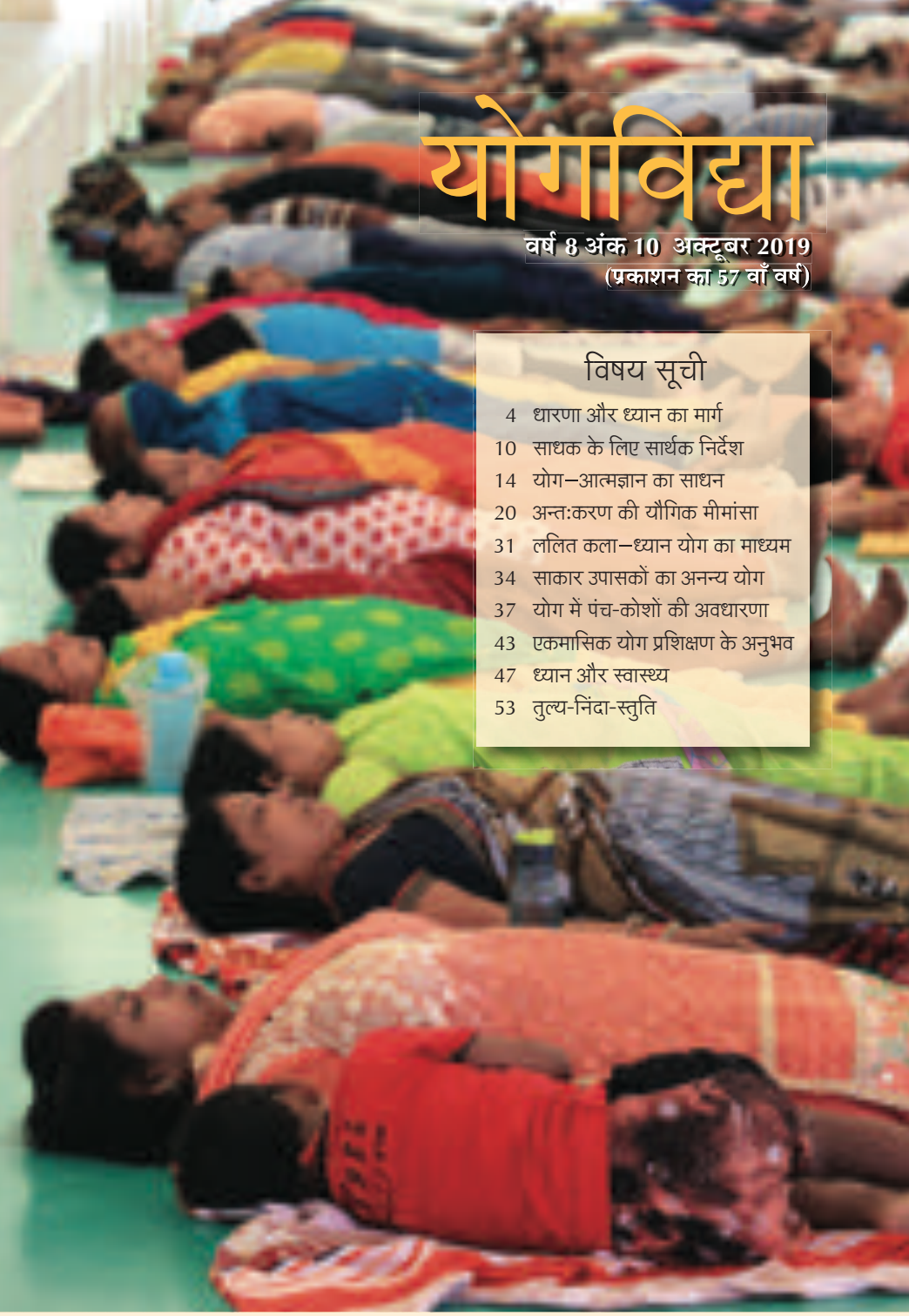

योगविद्या

वर्ष 8 अंक 10 अक्टूबर 2019
(प्रकाशन का 57 वाँ वर्ष)

विषय सूची

4 धारणा और ध्यान का मार्ग
10 साधक के लिए सार्थक निर्देश
14 योग–आत्मज्ञान का साधन
20 अन्त:करण की यौगिक मीमांसा
31 ललित कला–ध्यान योग का माध्यम
34 साकार उपासकों का अनन्य योग
37 योग में पंच-कोशों की अवधारणा
43 एकमासिक योग प्रशिक्षण के अनुभव
47 ध्यान और स्वास्थ्य
53 तुल्य-निंदा-स्तुति

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

धारणा और ध्यान का मार्ग

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

मन को एक लक्ष्य पर स्थिर करना एकाग्रता है। योग-दर्शन में इसे धारणा की संज्ञा दी गयी है। विचारों के केन्द्रीकरण को धारणा कहते हैं। मानसिक प्रवृत्तियों को केवल एक पदार्थ पर स्थिर और प्रतिष्ठापित करना धारणा है। जिस विधि से मन और मन-सम्बन्धी प्रवृत्तियाँ एकाग्र कर दी जाती हैं—उनमें चंचलता नहीं रहती, विक्षेप नहीं रहता—उस विधि को धारणा कहा जाता है। धारणा के बाद ध्यान का अवतरण होता है। जिस प्रकार धारणा में केवल एक ही वस्तु की धारणा होती है, उसी प्रकार ध्यान में भी केवल एक ही विचार का प्रवाह तैलधारावत् रहता है। विचारों की एकसार गति को ध्यान कहते हैं।

स्थिरता धारणा की विषेषता है। विक्षेप का निराकरण इसका तत्त्व है। धारणा का रूप निश्चित रहता है, अर्थात् जिस व्यक्ति में प्रसन्नता और शान्ति होगी, उसे धारणा में सफलता की सिद्धि भी होगी ही। प्रसन्नता और आन्तरिक उल्लास धारणा के मूल-रूप और मूल-परिणाम भी हैं। धारणा में सफल हो जाने पर विश्राम की अनुभूति, मानसिक समता और मानसिक हल्कापन तथा शारीरिक मृदुता स्वभावत: आ जाती हैं।

अब ध्यान की ओर चलें। ध्यान में नियमितता अनिवार्य है और समय की पाबन्दी का भी बड़ा महत्त्व है। नित्यप्रति दोनों सन्ध्याओं में, एक ही समय पर ध्यान के लिए बैठना चाहिए। दोनों सन्ध्याओं में ध्यान सम्भव न हो तो प्रात:काल और रात को इसका अभ्यास किया जा सकता है। प्रात:काल और रात्रि को सहज ही ध्यानोपयोगी सात्त्विक भाव का अवतरण हो जाता है। अत: यह ख्याल रखना चाहिए कि ध्यान के लिए समय, स्थान, कमरा, आसन और लक्ष्य एक ही हो, नित्यप्रति बदले न जायें। ध्यान में नियम-तत्परता और समय की पाबन्दी सफलता की जननी है। ध्यान का अभ्यासी अगर नागा किये बिना प्रतिदिन ध्यान करता है तो उसे अपेक्षाकृत शीघ्र सफलता मिलेगी। यदि ध्यान करते-करते अभी भी सफलता नहीं मिली तो उसे त्याग न दीजिए, बल्कि जुटे रहिए—सत्यशीलता, लगन, धैर्य और सहिष्णुतापूर्वक अभ्यास जारी रखिए। कुछ ही दिनों में अप्रत्याशित सफलता का सेहरा प्राप्त करोगे। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

कुछ भी क्यों न हो जाए, पर एक दिन के लिए भी अपने अभ्यास में नागा न करो। भले ही शरीर अस्वस्थ हो जाए, पर अभ्यास न छोड़ो—शृंखला को अस्त-व्यस्त न होने दो, धागा पकड़े रहो। रोग से आक्रान्त होने पर ध्यान करने से न केवल मानसिक बल, अपितु शारीरिक बल भी मिलता है। प्रयोगों से सिद्ध किया

जा चुका है कि ध्यान के अभ्यास से जो सात्त्विक लहरें स्फुरित होती हैं, उनसे रोग की विषाक्त प्रवृत्ति को पराभूत किया जा सकता है। मन में आध्यात्मिक शक्ति, शरीर में नव-बल और इन्द्रियों को सात्त्विक ओज प्राप्त होता है। यदि रोग-काल में भी ध्यान किया जाए तो समस्त शरीर-प्रणाली का नवीकरण होता है और सभी परिश्रान्त इन्द्रियों को विश्राम मिलता है। सच पूछिए तो ध्यान ही शरीर को सच्चा विश्राम दे पाता है। अत: ध्यान द्वारा उत्पन्न होने वाली सात्त्विक भावना की लहर के लिए सदा सावधान रहो। जब मन में सात्त्विक भावना का अवतरण होने लगता है, उस समय और सभी कामों को छोड़ कर ध्यान में बैठ जाओ और इसका सदुपयोग करो। ध्यान में बैठते समय लगन के साथ बैठो।

अहंकार, आत्म-परिमिति की भावना, हठी स्वभाव, आत्म-प्रशंसक राजसिक प्रकृति, चिड़चिड़ापन, दूसरे के चरित्र में विशेष रुचि, छल, पाखण्ड—ये सब ध्यान में विघ्न हैं। इन वृत्तियों की सूक्ष्म वासना मन में छिपी हुई रहती है। जिस प्रकार सागर में आन्तरिक भँवर होते हैं, उसी प्रकार मन के अन्दर भी भँवर सदा चक्कर लगाया करते हैं। योग और ध्यान के अभ्यास के दबाव से मन की विविध अशुद्धियाँ बाहर निकल आती हैं। साधकों का कर्तव्य मन का अनुशीलन करना और उस पर ध्यान देना है। योग्य उपायों और प्रभावशाली रीतियों से एक-एक कर उन सबका परिहार करना होगा। घमण्ड बड़ा भारी शत्रु है। इसकी शाखाएँ चारों दिशाओं में फैल जाती हैं। इसके कारण मन में राजसिक वातावरण पैदा हो जाता है। यह बार-बार प्रकट होता है, यद्यपि कभी-कभी इसकी लहरें शान्त हो गयी-सी दिखती हैं। जब कभी इसे जरा भी मौका मिलता है, यह अपना फन उठाने में नहीं चूकता।

अकारण ही बात-बात में रुष्ट हो जाने वाला साधक ध्यान में उन्नति नहीं कर सकता। साधक को सदा मिलनसार, प्रेमी और सहृदय होना चाहिए और हर अवस्था में जीवन बिताने की कला सीखनी चाहिए। इन सद्‌गुणों का विकास करते ही बुरी आदतें अपने-आप चली जायेंगी। कुछ साधक अपनी गलतियों की विवेचना होने पर रुष्ट हो जाते हैं। उनको इतना बुरा लगता है कि वे अपनी गलती सूचित करने वाले व्यक्ति को बुरा-भला कहने लगते हैं। उनका विचार है कि अमुक व्यक्ति केवल घृणा या द्वेषवश ही उनकी गलतियों पर नमक-मिर्च लगा कर सबको सुना रहा है। हमें यह बात निश्चयत: समझ लेनी चाहिए कि दूसरे लोगों में अपने अवगुणों को पहचानने की शक्ति अपूर्व और आश्चर्यजनक होती है। जो व्यक्ति आत्म-विश्लेषण का अभ्यास नहीं करता और जिसकी वृत्तियाँ बहिर्मुखी हो गयी हैं, वह अपने अवगुणों को नहीं समझ सकता। वह आत्म-प्रवंचना करता है और अपने को ही छलता है। उन्नति चाहने वाले साधक को चाहिए कि प्रत्येक से अपने अवगुणों को सुनने पर उनके परिहार का उपाय खोज निकाले और हर प्रकार से उनको अन्दर से बाहर निकाल फेंके। जब दूसरे लोग हमारे अवगुणों की विवेचना करते हों तो हमें उनके प्रति कृतज्ञ होना चाहिए—इसलिए कि उन्होंने हमारे अवगुण बतलाये, ताकि हम उनका सुधार कर लें। यदि इस प्रकार का अभ्यास किया गया तो हम ध्यान के साथ-साथ जीवन-पथ में भी सफल बन सकेंगे।

अपने मन की बातों और उसके आदेशों पर हाँ-में-हाँ मिलाना मानवीय स्वभाव है, उसका परिहार करना कठिन है। प्रत्येक ने अनन्त काल से अपने व्यक्तित्व का निर्माण किया है। तभी से उसने राजसिक मन को अपनी मनमानी करने की स्वतंत्रता दी है। फलत: मन का व्यक्तित्व अत्यन्त सबल हो चुका है। जब अनन्त काल से मन को ऐसे व्यक्तित्व की प्राप्ति होती रही है तो उसे लचीला, कोमल और परिष्कृत करना कोई एक-दो दिन का काम तो नहीं हो सकता। आत्म-महत्ता का

अहंकारी सदा दूसरों पर अधिकार करना चाहता है। वह दूसरों की राय स्वीकार नहीं करता, दूसरों की सम्मति भी नहीं मानता, भले ही वह सम्मति और राय बुद्धिपूर्ण और युक्तियुक्त हो। उसकी आँखें तिमिराच्छन्न रहती हैं। वह सदा यही सोचता है, 'जो-कुछ मैं करता हूँ, जो-कुछ मैं कहता हूँ, वह सत्य है। और लोग तो यूँ ही कह दिया करते हैं।' इस प्रकार वह अपनी गलतियों को न तो समझ सकता है और न ही उनका सुधार कर सकता है। तर्क और युक्ति से अपनी निराली चालों तथा सनक को युक्तिसंगत सिद्ध करता है। जब वह अपनी निर्बलताओं को औरों पर सिद्ध नहीं कर सकता तो झगड़ा करने लगता है तथा शक्ति का प्रयोग करता है। जब दूसरे उसका आदर-सत्कार नहीं करते तो वह आपे से बाहर हो जाता है। पोली प्रशंसा से वह हद से ज्यादा प्रसन्न हो जाता है। अपनी बातों को सत्य सिद्ध करने के लिए वह अनेकों झूठ बोलेगा। आत्म-स्वीकृति के साथ-साथ उसमें आत्म-श्लाघा भी रहा करती है।

ये आदतें व्यक्ति के सच्चे विकास में खतरनाक रोड़े हैं। जब तक व्यक्ति आत्म-श्लाघा और आत्म-स्वीकृति की भावना से मुक्त नहीं बन सकता, तब तक वह ध्यान और साधना में भी आगे नहीं बढ़ सकता। आत्म-स्वीकृति की भावना को समूल बदल देना अनिवार्य है। प्रत्येक पदार्थ और प्रत्येक बातचीत पर अपनी दृष्टि वैसे ही रखनी चाहिए, जैसी दूसरों की रहा करती है, तभी आत्म-स्वीकृति की आदत का निराकरण किया जा सकता है। सत्यता और पवित्रता के नये दृष्टिकोण से प्रत्येक वस्तु को परखने पर ही आत्म-स्वीकृति की आदत का परिवर्तन किया जा सकता है। मान, इज्जत और प्रतिष्ठा को सूकरविष्ठा समझ कर त्याग देना चाहिए। निन्दा, अपमान और तिरस्कार को आभूषणों के समान सहर्ष ग्रहण करना चाहिए।

प्रत्येक व्यक्ति दूसरों की आदतों के अनुसार चलने में कठिनाई का अनुभव करता है। सम्प्रदाय और वर्ग-विशेष से सम्बन्ध रखने के कारण उसके विचार इतने संकुचित हो जाते हैं कि वह दूसरों के विचारों को ग्रहण करने के लिए कभी तैयार नहीं रहता। ऐसे व्यक्ति को ही असहिष्णु कहा जाता है। वह सोचता है कि उसके विचार, व्यवहार और आचार ही ठीक हैं, दूसरों का व्यवहार और विचार गलत है। दूसरों के अवगुणों को देखने की आदत उसमें कूट-कूट कर भरी हुई रहती है। दूसरों के दोषों को देखने में वह सिद्ध होता है। उसकी आँखें सदा भ्रम के तिमिर से आच्छन्न रहा करती हैं, फलत: वह दूसरों के सद्गुणों को स्वीकार नहीं कर सकता। दूसरे लोग भले ही अच्छे और पुण्य कार्य करें, किन्तु उसका काम उनमें भी ऐब ही ढूँढना है।

ऐसा व्यक्ति कभी भी आत्म-शान्ति नहीं पा सकता। दूसरे व्यक्तियों से उसकी मित्रता नहीं बनी रहती। भला ऐसा साधक किस प्रकार अपने मार्ग पर आगे बढ़ सकेगा? एक तो अपने में गलतियाँ, दूसरा उन गलतियों को भी सही समझने की

हठी लगन—भला यह पतन पर महापतन नहीं तो क्या है? जो साधक आध्यात्मिक मार्ग पर जल्दी उन्नति करना चाहते हैं और चाहते हैं कि आध्यात्मिकता के फल की प्राप्ति कर सकें, वे इन दुर्गुणों से दूर रहें। यदि ये दुर्गुण हैं तो उनका परिहार कर लें। शुद्ध प्रेम, सहिष्णुता और अन्य सात्त्विक सद्गुणों का अपने अन्दर संचय करें।

एक बात और है। आध्यात्मिक पथ पर कठिनाइयों और बाधाओं के आ जाने से निराशा छा जाती है, धारणा और ध्यान में सदुत्साह नहीं रहता। जिन साधकों को कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ता, वे जल्दी ही उन्नति कर लेते हैं। इन बाधाओं का निराकरण और कठिनाइयों का परिहार प्रणव के जप और गुरु-कृपा से भी किया जा सकता है। महर्षि पतंजलि ने प्रणव के मंत्र का भाव और अर्थ-सहित जप करना अत्यन्त प्रभावशाली बतलाया है—*तज्जपस्तदर्थभावनम्*। ॐ का जप, उसके अर्थ पर विचार तथा उसकी भावना में तल्लीनता—इनसे मानसिक शान्ति मिलती है। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—*मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि*। अपने विचार को मुझ पर स्थिर करते हुए, मेरी कृपा से तुम सभी प्रकार की कठिनाइयों को पार कर सकोगे।

काश्मीर में रहकर भी एक साधक अपने उत्तरकाशी में रहने वाले गुरु पर ध्यान करता है। इस समय वे दोनों कितनी ही दूर क्यों न हों, एक-दूसरे से सम्बन्धित हो जाते हैं। शिष्य गुरु का ध्यान करता है और गुरु शक्ति, शान्ति, आनन्द और प्रसन्नता के विचारों को अपने शिष्य के पास भेजता है। शिष्य का सम्पूर्ण व्यक्तित्व आध्यात्मिक विद्युत्-स्फुरण से संचारित हो जाता है। गुरु के पास से आध्यात्मिक विद्युत् का स्फुरण चतुर्दिक् स्फुरित होकर शिष्य के पास पहुँचता है। शिष्य

अपनी योग्यता और ग्रहण-शक्ति के अनुकूल इस प्रेरणा-शक्ति को प्राप्त करता है। यदि श्रद्धा की प्रचुरता होगी तो गुरु द्वारा प्रेषित प्रेरणा-शक्ति भी उसी अनुपात से प्राप्त हो सकेगी। जब कभी शिष्य गुरु का ध्यान करता है, गुरु को तुरन्त प्रार्थना की इस लहर का आभास मिलता है, जो उसके शिष्य के पास से आ रही है। सूक्ष्मदर्शी साधक के लिए गुरु और शिष्य के पारस्परिक सम्बन्ध की इस विद्युत्-लहर को देखना सम्भव है। गुरु और शिष्य के बीच जो आध्यात्मिक लहर प्रवाहित होती है, वह सात्त्विक स्फुरण से संयुक्त रहती है—चित्त-सागर में नवीन तरंगें लाती है।

विकसित और महोन्नत आध्यात्मिक दृष्टिकोण से इस जगत् का विश्लेषण कीजिए तो जगत् की सत्ता का सच्चा ज्ञान हो जायेगा। जब वह महान् विराट्-अनुभूति आपमें व्यापक हो जायेगी तो वही अनुभव होगा, जो अर्जुन को हुआ था और जिसका वर्णन श्रीमद् भगवद्गीता के ग्यारहवें अध्याय में अद्भुत ढंग से किया गया है।

जिस प्रकार एक छोटे-से तालाब में कुछ मछलियाँ और जल-जन्तु इधर-उधर चक्कर लगाया करते हैं, जिस प्रकार घर की दीवारों पर चींटियाँ इधर-से-उधर घूमा करती हैं, उसी प्रकार यह जीव भी परमपिता परमात्मा के विशाल शरीर के अन्दर चक्कर लगा रहा है। यदि आप इस पर गम्भीर विचार करें तो आनन्द आयेगा और मारे हर्ष के रोंगटे खड़े हो जायेंगे। परमात्मा के इस विशाल शरीर के अन्दर कोटिश: जीव ऐसे हैं जो अपने-अपने स्वार्थ के लिए कहाँ-कहाँ का चक्कर नहीं लगा रहे हैं।

जिस प्रकार शरीर के अन्दर रक्ताणु वेगपूर्वक इधर-उधर स्खलित होते हैं, उसी प्रकार इस विशाल शरीर में हम जीव क्षण-क्षण में स्खलित हो रहे हैं। इसी शरीर के अन्दर, अनेकों मूढ़ और जड़बुद्धि जीवों में आपको गिने-चुने ज्ञानियों और सन्तों के दर्शन हो सकेंगे, जो जहाँ-तहाँ खड़े होकर अन्धकारमय देश को अपनी ज्योति से प्रकाशित कर रहे हैं, भूले-भटकों को खींच-खींच कर राह पर लगा रहे हैं, ठोकर खाकर गिरे हुए लोगों को फिर से उठाकर सहारा दे रहे हैं और अन्धकार-जनित वासना का निर्मूलन कर जीव को कृतकृत्य और आप्तकाम बना रहे हैं। इसी विराट् शरीर के अन्दर बहुत जगहों पर ज्योतियाँ जल रही हैं, किन्तु अभी वे पूर्ण विकसित नहीं हो पायी हैं। वे ज्योतियाँ हैं आध्यात्मिक साधकों की, जो विराट् ज्योति से प्रकाश लेकर अपना पक्ष उज्ज्वल कर रहे हैं और उसी उज्ज्वलता में अपना मार्ग ढूँढ रहे हैं और बढ़ रहे हैं। कुछ दिनों में ये ज्योतियाँ जब विकसित हो जायेंगी तो दूसरों को ज्योति दिखलायेंगी। ध्यान लगाकर इस दृश्य की कल्पना करो, कितना सुन्दर और प्रेरणाप्रद दृश्य है यह! यह यौगिक दर्शन मनुष्य के ज्ञान-चक्षुओं को खोल देता है।

साधक के लिए सार्थक निर्देश

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

तुम्हें मानव जीवन के लक्ष्य का निर्णय करना है। प्रत्येक जीव में अमरत्व, सर्वज्ञता और आनन्द की कामना सनातन है, अत: सच्चिदानन्द जीवन का लक्ष्य हुआ। मानवेतर जीवों में जीवन-विकास प्रकृति द्वारा नियन्त्रित और इन्द्रियों तक सीमित है, परन्तु मानव योनि में मानस और ज्ञान की विशेषता है। वैसे भी सच्चिदानन्द बनने की प्रवृत्ति किसी-न-किसी रूप में सबमें है, अत: मानव जीवन की साधनाएँ इसीलिए होनी चाहिए। अर्थात् अमरत्व, सर्वज्ञता और आनन्द की जो स्वाभाविक साधना सबमें चल रही है, उसे पुरुषार्थ का रूप देना है।

श्रद्धा की आवश्यकता

ज्ञान के मार्ग में मन ही बाधक और मन ही साधक है। अत: पहले मन को साधना है। साधने के इस मार्ग में श्रद्धा सर्वोपरि और सर्वव्यापक है। श्रद्धा का केन्द्र अनित्य पदार्थ नहीं है। अनित्य वस्तु के प्रति श्रद्धा सच्ची, कल्याणकारी और सुन्दर नहीं हो सकती। श्रद्धा का केन्द्र वही हो सकता है, जो नित्य हो, सर्वव्यापक हो, सर्वश्रेष्ठ हो, सर्वकलासम्पन्न हो और साक्षात् 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' तथा अब तक अदृष्ट हो। श्रद्धा का एकमेव आधार ईश्वर है, क्योंकि वह अपने से भिन्न नहीं है।

श्रद्धा का व्यावहारिक मतलब हुआ धर्म-पालन। धर्म के तीन अंग हैं—उपासना, जीवन-चर्या और परमार्थ यानी परोपकार। इन तीनों के द्वारा ईश्वर पर श्रद्धा पूर्ण होती है। परन्तु उपासना इनमें प्रथम और श्रेष्ठ है, क्योंकि उपासना से हमारा मन वृत्तिशून्य होकर एक ऐसे आकार को प्राप्त कर लेता है, जिसे ईश्वर ही कहना चाहिए। मन ईश्वराकार हुआ तो उसमें अनेक शक्तियाँ आ जाती हैं। अब वह धर्म के अन्य अंगों, अर्थात् जीवन-चर्या और परमार्थ के योग्य बन जाता है।

उपासना की विधियाँ

नाम-स्मरण—उपासना में पहला व्यवहार है नाम-स्मरण। नाम-स्मरण वैसे तो सदा होना चाहिए, पर आरम्भ में इसका अभ्यास किया जाता है। उपासना में प्रार्थना, स्तुति आदि भी करनी चाहिए। चित्त की सत्कारसेवित एकाग्रता में भावुकता की जागृति पहली शर्त है।

प्रार्थना—मनोविकार क्या हैं, कैसे दूर होते हैं, इनकी परिभाषा क्या है? कौन-कौन से अवांछनीय तत्त्व मन में भरे पड़े हैं, जिन्हें बाहर निकाल फेंकना है? पेट का उदाहरण लीजिए। जैसे पेट के मल-दोष को निकालना जरूरी है वैसे ही मन के

विकारों को दूर करने के लिए प्रार्थना जरूरी है। विचारों के अभाव में ही सुविचारों का प्रयोजन है, जैसे मल-दोष के अभाव होने पर पोषक तत्त्वों का प्रयोजन होता है।

प्रार्थना स्पष्ट, सीधे और बेहिचक होनी चाहिए। प्रार्थना की सफलता पर बाकी सफलता निश्चित है। यह विश्वास पूरा होना चाहिए कि प्रार्थना का इष्ट ईश्वर सब कुछ सुन रहा है। प्रार्थना संस्कार-पीठिका के क्लिष्ट तत्त्वों को समूल खत्म कर देती है। अत: प्रार्थना पाप-नाशक भी है। इसमें जरा भी सन्देह नहीं होना चाहिए। प्रार्थना का एक रूप आत्माभिव्यक्ति और आत्म-चिन्तन भी है।

कीर्तन–कीर्तन के लिए सबसे पहले मधुरता, पवित्रता और नाद की आवश्यकता है। नाद की शक्ति क्या है? चित्तवृत्ति पर शब्द तन्मात्रा का प्रभाव जल्दी पड़ता है। मधुर नाद से स्नायविक तनाव दूर होते हैं, तभी ध्येय को प्रत्यक्ष करने में सहायता मिलती है। मानसिक तनावों के रहते ध्यान नहीं होता। पवित्र नाद से मनोवृत्तियों के दूषित तनाव दूर होते हैं। श्रवणेन्द्रियाँ अन्तर्मुखी होती हैं। उच्चारित नाद अन्तर्मुख होकर नाड़ी-शुद्धि करता है और मन आनन्द-विभोर होकर ईश्वर-रूप को देखने की अधिक क्षमता पा लेता है।

सबसे पहले शब्द का विषय इन्द्रियों में लीन होता है, फिर इन्द्रियाँ मन में लीन होती हैं, फिर मन नाद में लीन होता है। कीर्तन स्वयं में ईश्वर-प्राप्ति का

एक स्वतन्त्र साधन है। नाम-संकीर्तन करने से जब देह-बुद्धि और जीव-बुद्धि के आवरण दूर होते हैं, तब आत्म-तत्त्व प्रत्यक्ष होता है। इस अवस्था में कीर्तन बैखरी, उपांशु और मानसिक लोकों का अतिक्रमण कर अन्तश्चेतना को अपने रूप में ढाल देता है, तो चित्तवृत्तियों के पाप-पुण्यादि कहे जाने वाले विकृत रूप अपने आप ही परिवर्तित हो जाते हैं।

इसमें कोई शक नहीं कि चित्त की विकृत परम्पराओं को एक आकार में ढाल देने से पहले के सभी आकार शेष नहीं रहते। तभी तो कहा जाता है कि कीर्तन-योग से साधक पाप-पुण्यादि से तर जाता है। कीर्तन कम-से-कम पन्द्रह मिनट तो जरूर एक ही लय में निरन्तर, भ्रामरी के स्वर में होना चाहिए। ध्यान का केन्द्र या तो कीर्तन से उत्पन्न नाद अथवा कीर्तन का ध्येय इष्टदेव होना चाहिए।

जप—मन्त्र जपना जप-योग है। अक्षर तो शक्ति के अक्षय भण्डार होते हैं। उन शक्तियों को अक्षर के रूप में आवश्यकतानुसार योग द्वारा व्यवस्थित किया जाता है। यही मन्त्र है। मन्त्र का अर्थ व्याकरण के आधार पर लगाना उचित नहीं। मन्त्र का अर्थ तो साक्षात्कार की वस्तु है, यह मन्त्र के जप से उत्पन्न होने वाला फल है। मन्त्रार्थ लगाने के लिए प्रत्येक अक्षर के वर्ण, तत्त्व, गुण और सीमा का अलग-अलग विश्लेषण करना होता है। शक्ति-तत्त्वों के समुच्चय का नाम है मन्त्र। यद्यपि सभी मन्त्र ईश्वर के नाम हैं, परन्तु वृत्तियों के स्तर पर विभिन्न फलों के दाता हैं। मन्त्रार्थ के अलावा मन्त्र-भाव भी एक चीज है। तभी मन्त्र मन की गिरी हुई दशा का सुधार कर सकते हैं।

जप-योग में मन्त्र के बाद माला की आवश्यकता होती है। मन के लिए तो माला अति आवश्यक है। सुमेरु नहीं छूना चाहिए। इससे भटका हुआ मन सचेत होता है। आरम्भ में 54 मनके, फिर 108 मनके, फिर 1008 मनके वाली माला लेनी चाहिए। अधिक मनकों की माला एकाग्र-चित्त वालों के लिए बहुत लाभदायक है, परन्तु विक्षिप्त-चित्त वालों के लिए मनोभ्रामक है। जप-संख्या गिनने के लिए माला और मालाओं के गिनने के लिए एक और माला बायें हाथ में रख लेनी चाहिए। घड़ी के अलार्म से जप समाप्ति की सूचना पाने का अभ्यास अच्छा नहीं है, क्योंकि अलार्म के झटके अन्तर्मुख स्तर पर जाकर गहरा धक्का पहुँचाते हैं और झकझोर देते हैं।

मन्त्रयोगी को गुरु की भी आवश्यकता है। गुरु के तीन प्रकार हैं—कान फूँकने वाला, दिल फूँकने वाला और आत्मानुसन्धान कराने वाला। इन्हें क्रमश: निकृष्ट, मध्यम और उत्तम जानना चाहिए। कान फूँकने वाला गुरु तो किसी काम का नहीं। आत्मानुसंधान कराने वाले बहुत कम मिलते हैं। अत: दिल फूँकने वाले गुरु ही मिल जायें तो बहुत है। दिल फूँकने वाले गुरु मन्त्रोपदेश और अभ्यास भी बतलाते हैं तथा साधक को सिद्धि प्राप्त होने तक आदेश देते रहते हैं।

जप के तीन रूप होते हैं—बैखरी, उपांशु, मानसिक। चौथा रूप अजपाजप है। यह कहने-सुनने की बात नहीं है, बल्कि करने की चीज है। जप प्रतिदिन

तीनों प्रकार का होना जरूरी है। मानसिक जप यद्यपि बहुत प्रभावशाली होता है, तथापि विक्षिप्तचेता के लिए यह और अधिक विक्षेपों की सृष्टि करता है। अत: तीन हिस्सा वाचिक जप, दो हिस्सा उपांशु और एक हिस्सा मानसिक जप आरम्भ की अवस्था में किये जायें। चित्त के विक्षेप कम होते चलें तो तीन प्रकार के जप बराबर-बराबर। जप करते समय इष्ट-रूप की तस्वीर सामने रहनी चाहिए। जप-योग स्वयं में पूरी साधना है।

पुरश्चरण मन्त्र-सिद्धि के लिए किया जाता है। जितने अक्षर अपने इष्ट मन्त्र में हैं, उतनी लाख बार नियमपूर्वक जप करने को पुरश्चरण कहते हैं। इष्ट मन्त्र में जो ॐ सम्मिलित है, वह इष्ट-मन्त्र में नहीं आता। जैसे 'रामतारक मन्त्र' में ॐ सहित 14 अक्षर हैं, परन्तु पुरश्चरण में केवल 13 लाख ही जप करना चाहिए। इसके अलावा पूरी जप-संख्या का दसवाँ हिस्सा और अधिक करके उसे गुरु अथवा लोक-हित के नाम पर संकल्प कर देना चाहिए।

धारणा, ध्यान और दर्शन

जप करते हुए अपने इष्ट के रूप को निहारना, उन्हें अपने मन में बसाना 'जप-सहित-धारणा' कहलाती है। परन्तु जप रहित अवस्था में केवल अपने इष्ट का रूप निहारना और उसे अपने मन में बसाना 'धारणा' कहलाती है। जब धारणा पूरी हो जाती है, तब उसे 'ध्यान' कहते हैं। इष्ट की मूर्ति सामने आँखों की सीध में डेढ़ फुट के फासले पर होनी चाहिए। कुछ देर तक उन्हें एकटक निहारना, फिर आँखें बन्द कर उन्हें मन में धारने की कोशिश करना, यही धारणा है।

जब रूप मन में आ गया और बैठ गया, मन एकाग्र हो गया, इधर-उधर की बातें विस्मृत हो गईं, तब ध्यान जम गया। धारणा करते वक्त आरम्भ काल में तो जप आवश्यक है ही, उत्तर काल में भी अच्छा है यदि जप के ही साथ-साथ धारणा का अभ्यास किया जाए। हाँ, जप मानसिक होना चाहिए। इष्ट-देव की मूर्ति की ओर देखो, अपने भावों को जाग्रत करने की कोशिश करो, प्रेम ले आओ। उसकी उपस्थिति का अनुभव करो। अच्छा होगा यदि उपासना में बैठने के समय से ही उनकी ओर निहारना और उन्हें मन में धारण करना शुरू कर दो। दीर्घ काल तक ऐसा करते रहने से इष्ट की मूर्ति पहले मानसिक, फिर अन्त: मानसिक और फिर चिन्मय हो जाती है। ध्यान का समय, स्थान, लक्ष्य, दिशा, साधना तथा अन्य नियम निरन्तर उसी प्रकार चलते रहने चाहिए। बदलोगे तो साधना में व्यतिक्रम होगा।

ध्यान की परिणति दर्शन में होती है। दर्शन के बारे में जो तथ्य हैं, गुरु-शिष्य परम्परा में ही दिए जाते हैं। ध्यान करने के बाद कुछ देर के लिए अन्त:पट को निर्विकार और निराकार कर दो। हल्के बन जाओ। इससे सात्त्विकता आती है। तदुपरान्त प्रार्थना-स्तोत्रादि करके आँखें खोल दो।

योग–आत्मज्ञान का साधन

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

योग एक साधन है, जिसके द्वारा हम अपने जीवन को पूर्ण बनाकर, शरीर, मन, भावना और बुद्धि को संतुलित बनाकर, जीवन के पथ पर आगे बढ़ सकते हैं। योग का समाज में यही वास्तविक प्रयोजन है। हमारी परम्परा हमें यह शिक्षा देती है कि जीवन में अर्थ, काम, धर्म और मोक्ष का समन्वय होना चाहिए। जब इन चारों का समन्वय होता है, तभी हम अपने इस मानव-जीवन के लक्ष्य को पूरा कर पाते हैं। अगर हम एक या दो पक्षों को ही अपनाकर चलते हैं, तो हमारा मानव-जीवन अधूरा रहता है। लेकिन समाज ने इन चार अंगों को दो भागों में विभक्त कर दिया, और कहा कि सांसारिक लोगों के लिए अर्थ और काम का मार्ग है, तथा जो व्यक्ति

संसार से अपना सम्बन्ध-विच्छेद करना चाहते हैं, त्याग का मार्ग अपनाना चाहते हैं, उनके लिए धर्म और मोक्ष का मार्ग है।

जिस दिन यह विभाजन हुआ, हमारा जीवन खण्डित हो गया, विक्षिप्त हो गया, और हम पतन की ओर बढ़ने लगे। इसी का परिणाम आज हम अपने जीवन में देखते हैं। हम अपने शरीर को ही सब कुछ मान बैठे हैं, लेकिन यह रोग से पीड़ित रहता है। मन को सब कुछ मान बैठे हैं, लेकिन वह अशान्त है। इन सबके साथ हमारी इच्छा होती है कि हम स्वास्थ्य और शान्ति प्राप्त करें, लेकिन जीवन के टूटे हुए तारों को हमने जोड़ा नहीं है। जिस दलदल में हम फँसे हुए हैं, उसी में फँसे रहकर हम यह कल्पना करते हैं कि हम शुद्ध और पवित्र हैं।

सबसे पहले तो आपको यह विचारधारा बदलनी होगी, और अपने जीवन में इन चार अंगों को जोड़ना पड़ेगा। केवल दो को अंगीकार करने से काम नहीं चलेगा। जब हम इस विचार को आत्मसात् कर लेंगे, तभी अपने जीवन में सकारात्मक और सृजनात्मक परिवर्तन ला पायेंगे। मैं यह बात इसलिए कह रहा हूँ कि बहुत लोग मेरे पास आते हैं, और यही कहते हैं—स्वामी जी, मुझे यह तकलीफ है, वह तकलीफ है, मानसिक अशान्ति है, मैं क्या करूँ? आप कुछ कर दीजिए कि मेरा काम हो जाए, फिर मैं आपको सहयोग दूँगा।

हम आपसे सहयोग लेने नहीं आए हैं, बल्कि एक ऐसे विज्ञान, एक ऐसी विद्या के बारे में बतलाने आए हैं, जो आपकी अपनी है, जो कभी पुरानी नहीं होती, जो सनातन है। लेकिन हम लोग इस विद्या को, इस विज्ञान को भूलते जा रहे हैं। अगर हमें आपका सहयोग चाहिए तो एक ही बिन्दु पर। आप यह संकल्प करें कि हम इस विज्ञान को सही तरीके से समझेंगे और इस विद्या को अपने जीवन में अपनायेंगे।

योग—जीवन जीने की कला

यह विद्या न शारीरिक है न मानसिक, बल्कि जीवन जीने की एक कला है। जब हमें इस कला का ज्ञान नहीं रहता, तब हमारे जीवन में असंतुलन, व्याधि, विकार, तनाव, भय, चिन्ता, परेशानी, बेचैनी आदि उत्पन्न होती है। आप किसी नृत्य को देखते हैं जो दिखने में तो बहुत सुन्दर लगता है, आपका दिल भी भर उठता है उस नृत्य को देखकर, लेकिन कोई यह नहीं सोचता कि उस नृत्य को सिद्ध करने के लिए कितनी साधना करनी पड़ी होगी। क्या कोई मंच पर चढ़ते ही नाचने लग जाएगा? क्या हारमोनियम को पास रखते ही कोई गाने लग जाएगा? नहीं, साधना की आवश्यता होती है। जहाँ तक हमारा अनुभव रहा है, मनुष्य जीवन में साधना की कमी है। हम बिना साधना किये उपलब्धि चाहते हैं। बीमार हम हैं, लेकिन चाहते हैं कि दवाई कोई और खा ले, और हम ठीक हो जायें। जब हमारे भीतर इस प्रकार की विचारधारा है, तो अन्त में इसका क्या परिणाम होगा?

यही एक समस्या है जिसका हम हमेशा अनुभव करते हैं। कम-से-कम जो व्यक्ति हमारे पास अपनी समस्याएँ लेकर आते हैं, उनमें तो हम साधना की इसी कमी को देखते हैं। जब इस प्रकार की कमी को देखते हैं तो योग-सूत्रों का एक सूत्र हमें स्मरण हो आता है—*स तु दीर्घकाल-नैरन्तर्य-सत्कारासेवितो दृढभूमि:।* जिस अभ्यास को दीर्घकाल तक किया जाए, जिस अभ्यास के प्रति हमारी श्रद्धा रहे, आस्था रहे, उसे करने से ठोस आधार निर्मित होता है। जब हमें इस जीवन में यह ठोस आधार मिलता है तब हम अपने दूसरे जीवन की ओर कदम बढ़ा सकते हैं, क्योंकि मनुष्य का जीवन तो बहुआयामी जीवन है।

हम लोग भौतिकवाद से सम्मोहित होकर अपने दूसरे रूप को भूल चुके हैं, लेकिन जब हमारी जिन्दगी में एक प्रयास की शुरुआत होती है, और उस अभ्यास को हम धैर्यपूर्वक, श्रद्धा-भावना के साथ दीर्घकाल तक करते हैं, तब हमारी विचारधारा, व्यवहार, दृष्टिकोण, आदर्श और दर्शन में कुछ परिवर्तन होते हैं।

योग की शुरुआत इसी सूत्र से होनी चाहिए, ऐसा हमारा मत है। केवल आसन-प्राणायाम या जप-ध्यान करके हम स्वयं में परिवर्तन नहीं ला सकते। हमें गाड़ी चलानी नहीं आती, उसे नियंत्रण में रखना नहीं आता, लेकिन चलाने के लिए बैठ जाते हैं। अन्त में परिणाम होता है—दुर्घटना। और अगर गाड़ी को नहीं चलाते, तो चाहे आप आधा घण्टा उसमें बैठे रहिए, एक कदम भी आगे नहीं बढ़ पायेंगे।

योग एक अनुशासन की प्रक्रिया है, जिसको अपनाने से हम अपने शरीर को, अपनी जीवन-पद्धति को संयत और संतुलित बनाकर आगे बढ़ सकने में सक्षम हो जाते हैं। योग के जो विविध अभ्यास हैं, वे तो मात्र माध्यम हैं जिनके द्वारा हम अपने व्यक्तित्व को समझ सकें, क्योंकि अंततोगत्वा परिवर्तन व्यक्तित्व और विचारधारा में होना है। मनोविज्ञान भी इस बात को स्वीकार करता है कि जब शरीर व्याधि से पीड़ित रहता है, तब शारीरिक पीड़ा से अधिक भयंकर पीड़ा मन में उत्पन्न होती है। शरीर में एक फुँसी हो जाती है तो वही फुँसी मन के भीतर कैंसर का रूप धारण करती है। समस्या छोटी रहती है, लेकिन हमारे मन के भीतर वह विशाल अट्टालिका का रूप धारण कर लेती है। जब इस प्रकार का हमारा मन है, जो तिल को ताड़ बना देता है, तब रोग चाहे शारीरिक हो या मानसिक, उसका निराकरण कैसे होगा?

योग द्वारा असाध्य रोगों का निराकरण

मैं आपको एक उदाहरण देता हूँ जो मुझे अत्यन्त प्रिय है। ऑस्ट्रेलिया में कुछ वर्षों पूर्व कैंसर के छ: ऐसे मरीजों पर योग का प्रयोग किया गया था जिनके लिए कोई उपाय नहीं बचा था, आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की सभी पद्धतियाँ विफल हो

गयी थीं। कैंसर शोध संस्थान के जो प्रमुख चिकित्सक थे, उन्होंने मरीजों से कहा कि अब दवाई का भरोसा छोड़ दो, हम लोग एक और प्रयास करते हैं, और वह प्रयास रहेगा योग का। सबसे पहले योगनिद्रा का अभ्यास कराया गया। योगनिद्रा का अभ्यास शिथिलीकरण का अभ्यास है। शरीर और मन को विश्राम देने की प्रक्रिया है, जिसमें मन स्थूल अवस्था को पार करके सूक्ष्म अवस्था में प्रवेश कर पूर्ण विश्राम का अनुभव करने लगता है, तनावमुक्त अवस्था का अनुभव करने लगता है। फिर प्राणायाम का अभ्यास कराया गया। प्राणायाम के बारे में लोग कहते हैं कि इससे प्राण जाग्रत होता है। अवश्य होता है, लेकिन इसका एक शारीरिक पक्ष भी है, जो हमारे स्नायु-संस्थान की उत्तेजना को शान्त करता है। फिर अजपाजप का अभ्यास कराया गया। अजपाजप की क्रिया होती है श्वास के साथ मन्त्र को जोड़कर उसका जप करना, जिसके बारे में कबीरदास जी कहते हैं–

ऐसा जाप जपो मन लाई, सोऽहं सोऽहं सुरता गाई ।
छ: सौ सहस इक्कीसौ जाप, अनहत उपजै आपै आप ॥

इस अजपाजप की क्रिया में मन इस प्रकार केन्द्रित हो जाना चाहिए कि सुरता, अर्थात् श्वास के साथ चौबीसों घंटे मंत्र-जप चलता रहे।

मात्र इन तीन अभ्यासों से उन मरीजों को जो फायदा हुआ, उसके बारे में इतना ही कहना पर्याप्त रहेगा कि जिनकी मात्र छ: महीने की जिन्दगी बाकी थी, उन्हें जीते

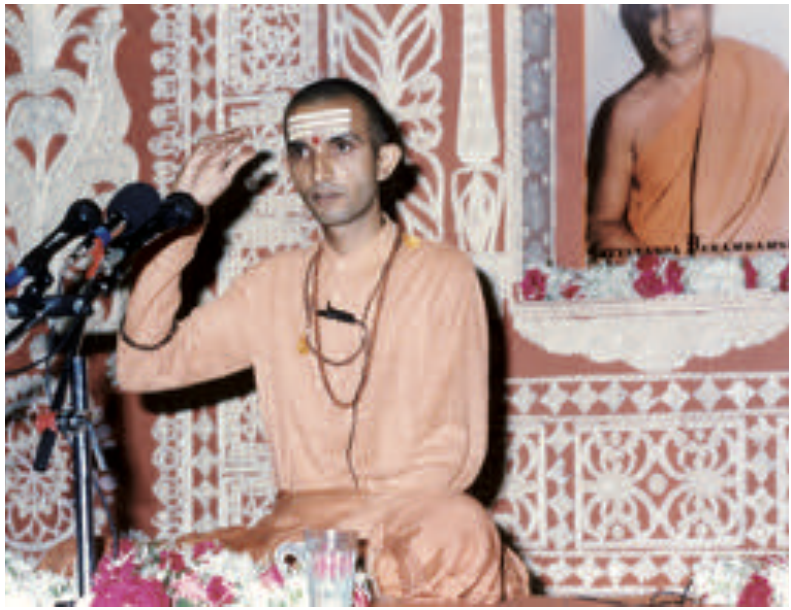

हुए आज चौदह साल से अधिक हो गये हैं! उन्हें देखने से विश्वास नहीं होता कि वे कभी कैंसर से पीड़ित हो मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए थे।

अब यहाँ पर क्या बतलाया गया? न आसन बतलाया गया, आसन के बदले कहा गया चुपचाप सो जाओ, योगनिद्रा का अभ्यास करो। न ही हठ योग या राज योग की शिक्षा दी गयी, केवल कहा गया कि प्राणायाम करो। एक नाक से श्वास अन्दर खींचो, दूसरी से छोड़ो। और ध्यान का एक अभ्यास कराया गया। लेकिन चिकित्सकों एवं मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि इन तीन अभ्यासों से वे मरीज जब शारीरिक तनाव से मुक्त हो गये, तब शरीर के प्रतिरक्षा-संस्थान में प्राणायाम के द्वारा शक्ति का संचार किया गया। जब शरीर के भीतर शक्ति का संचार हुआ, तब बिना किसी प्रयास के अपने आप रोग के निराकरण की प्रक्रिया शुरू हो गयी। ध्यान के द्वारा मन से बीमारी और मृत्यु के भय को हटाया गया। और वे मरीज छः महीने के भीतर ही ठीक हो गये। आज वे पूर्ण रूप से स्वस्थ हैं।

इससे यह साबित होता है कि शरीर को हम कहीं और से नियन्त्रण में रख सकते हैं। योग कहता है कि शरीर का संचालन मन से होता है, पर मन को अपने नियन्त्रण में लाने की आवश्यकता होती है। जब मन हमारे नियन्त्रण में आ जाता है तब शरीर और मन के बीच एक सामंजस्य की स्थापना होती है, जो जीवन के लिए सकारात्मक एवं उपयोगी सिद्ध होती है। इसलिए हमने आपसे पहले कहा कि योग की शुरुआत न राज योग से होती है, न हठ योग से, न कर्म योग से, न भक्ति योग से। योग एक मनोविज्ञान और आत्मविज्ञान है। मनोविज्ञान इसलिए कि योग यह मानता है कि हमारे भीतर इस प्रकार की एक शक्ति छुपी हुई है, जिसे नियन्त्रण में ले आने से सभी प्रकार के तनाव, क्लेश और दुःख समाप्त हो जाते हैं। और आत्मविज्ञान इसलिए कि जीवन के टूटे हुए तार योगाभ्यास से जुड़ जाते हैं और जीवन में पूर्णता का अनुभव होने लगता है।

योग के तीन आयाम

योग के तीन पक्ष होते हैं—शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक। इसके शारीरिक पक्ष में आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बंध, षट्-कर्म इत्यादि अभ्यास आते हैं, जो हठ योग तथा राज योग के अंग हैं। मानसिक पक्ष में प्रत्याहार की क्रियाओं, धारणा के अभ्यासों, कर्मयोग की भावना तथा भक्तियोग की विभिन्न अवस्थाओं का समावेश होता है। इन अभ्यासों के द्वारा मन, भावना, विचार और व्यवहार को परिमार्जित किया जाता है। जब ये शुद्ध, पवित्र और निर्मल हो जाते हैं तब कर्मों में परिवर्तन होते हैं, कर्मक्षय की स्थिति आती है।

योग का तीसरा पक्ष है आध्यात्मिक, जिसका हम आपको केवल तरीका बतला सकते हैं, उपलब्धि नहीं। यह तो उसी प्रकार की चीज है जैसे अनेक वर्षों पूर्व

एक वैज्ञानिक ने सायनाइड का स्वाद जानना चाहा था। जानता था कि अगर मैं चखूँगा तो मरूँगा, लेकिन फिर भी उसने सोचा मैं मरूँ तो क्या, विज्ञान को तो मेरे प्रयोग से एक लाभ होगा। लोगों को सायनाइड का स्वाद मालूम पड़ जाएगा। वह एक हाथ में सायनाइड से भरा गिलास और दूसरे हाथ में कागज-कलम लेकर बैठ गया। जल्दी से जहर का गिलास पीया, कागज में कुछ लिखा, और मर गया। दूसरे वैज्ञानिक कागज में लिखे गये शब्दों को देखने के लिए आये। एक ने कहा, सायनाइड का स्वाद खट्टा है। दूसरे ने कहा, नहीं, मीठा है। कागज में मीठा लिखा है। तीसरे ने कहा, नहीं, इसका स्वाद तो नमकीन है।

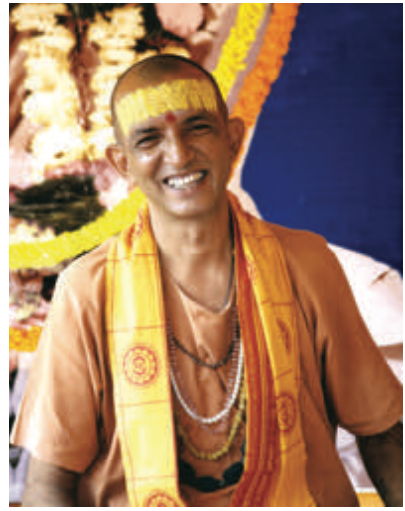

आपको मालूम कागज में क्या लिखा हुआ था? अंग्रेजी का केवल एक अक्षर 'एस' लिखा था, जिसका मतलब स्वीट (मीठा) भी हो सकता है, सॉल्टी (नमकीन) भी हो सकता है, सावर (खट्टा) भी हो सकता है। तो उस 'एस' को देखकर जो अपनी विचारधारा प्रस्तुत करने लगे, उनकी क्या उपलब्धि रही?

उपलब्धि तो एक ही व्यक्ति को हुई, जिसने उसके स्वाद को जाना, लेकिन जानकर फिर बता नहीं सका। यही योग का आध्यात्मिक पक्ष है—'पी ले पी ले राम नाम रस प्याला, जिसको पीकर हो जा तू मतवाला।' यहाँ तक पहुँचने के जो उपाय बताए गये हैं, वे हैं राज योग, भक्ति योग, कुण्डलिनी योग तथा अन्य योगों के अभ्यास, क्योंकि इनके द्वारा हम अपनी अतीन्द्रिय शक्तियों को जाग्रत करते हुए एक ऐसी अवस्था को प्राप्त करते हैं, जहाँ पर तार जुड़ जाते हैं, करेंट दौड़ने लगता है और ईश्वर-अनुभूति की स्थिति आती है। जो उस अवस्था को प्राप्त करता है, उसका वर्णन नहीं कर पाता, केवल उस मार्ग पर चलने की दिशा बता सकता है।

आप योग के बारे में अधिक-से-अधिक जानकारी ग्रहण करें, यह हमलोगों की इच्छा है क्योंकि योग हमारी भारतीय परम्परा और जीवन का अभिन्न अंग रहा है। लेकिन आज स्थिति इस प्रकार की हो गयी है कि 'घर की मुर्गी दाल बराबर।' हम लोग योग से दूर होते जा रहे हैं। अत: हमारी इच्छा है कि आप लोग यथाशक्ति प्रयास करके अपनी परम्परा के विज्ञान को, विद्या को सीखें। पुन: जब आप इस विज्ञान को अपने जीवन में जोड़ पायेंगे, तब हमें यह कहने में गौरव होगा कि हमारा देश वास्तव में ज्ञान का देश है, जिसने पूरे जगत् को 'आत्मदीपो भव' का संदेश दिया।

अन्त:करण की यौगिक मीमांसा

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

अन्त:करण संस्कृत के दो शब्दों के मेल से बना है—अन्त: अर्थात् आन्तरिक और करण अर्थात् उपकरण। यह मनुष्य का एक आन्तरिक उपकरण है जिसके चार तत्त्व या शक्तियाँ हैं—बुद्धि, अहंकार, मनस् और चित्त। योग के अनुसार ये चार तत्त्व ऐसे माध्यम हैं जिनके द्वारा चेतना कार्य करती है। अन्त:करण होने के कारण ही मनुष्य अन्य प्राणियों और पदार्थों से भिन्न है। जीवन के इन निम्नतर स्वरूपों में अन्त:करण प्रसुप्त अवस्था में रहता है। प्रकृति की ये रचनाएँ बुद्धि, विवेक, विचार या अहं के स्तर से नहीं, बल्कि सहज वृत्ति के स्तर से कार्य करती हैं। उदाहरण के लिए कुत्ता सहज रूप से सब्जी की अपेक्षा मांस खाना पसन्द करेगा। वह चेतन रूप से उनमें अन्तर नहीं करता, यह उसकी सहज वृत्ति है जो उसके शरीर का नियन्त्रण करती है।

मनुष्य में यह क्षमता वर्तमान स्थिति में धीरे-धीरे विकास करती हुई पहुँची है। मनुष्य जीवन के सभी रूपों के बीच से विजयी होकर ऊपर आ गया है और यह उसकी इस आन्तरिक शक्ति के कारण हुआ है जिसने उसे विवेक की, विचार करने, योजना बनाने, स्मरण रखने और कार्य करने की क्षमता प्रदान की है। हालाँकि, मनुष्य का बौद्धिक वर्चस्व उसके अन्त:करण की पूर्ण क्षमता के लिए किसी भी प्रकार अनुपूरक के रूप में सहायता नहीं करता है। इसमें केवल उस शक्ति की झलक मिलती है जो इसके अन्दर है। यदि यह उपकरण अपनी पूर्ण क्षमता प्राप्त कर ले तो मनुष्य न केवल प्रकृति की निम्नतर रचनाओं को, बल्कि स्वयं अपने अन्दर छुपी हुई शक्तियों को भी नियन्त्रित कर पायेगा जिनमें सृजन, पालन एवं नाश करने की अन्तर्जात क्षमता है। इस प्रकार वह प्रकृति का एक सह-स्रष्टा या एक ऐसा उपकरण बन जायेगा जो उसकी ब्रह्माण्डीय प्रक्रिया की पुनरावृत्ति करेगा। वे योगी जिन्होंने ऐसा करने की शक्ति प्राप्त कर ली है, उन्होंने अपने अन्त:करण के रहस्यों को ढूँढकर उन पर विजय पायी है।

मानव चेतना अन्त:करण के माध्यम से कार्य करती हुई अतीत, वर्तमान एवं भविष्य के अनुभवों से सम्बन्धित तथ्यों की व्याख्या करती है, उन्हें वर्गीकृत करती है, उनका अनुमान लगाती है, उन्हें अनुभव करती है और उनका बोध करती है। आप जो भी अनुभव करते हैं, देखते, करते या बोलते हैं, वह सब वहाँ संचित होता है। अन्त:करण का एक भाग ऐसा है जिसे न केवल इस जीवन और इससे सम्बन्धित अनुभवों का ज्ञान होता है, बल्कि सम्पूर्ण अन्तरिक्ष एवं ब्रह्माण्ड का ज्ञान होता है। यद्यपि सजगता की स्थूलता के कारण ज्ञान की पूरी क्षमता प्रभावहीन रह जाती है और प्रकट नहीं हो पाती है। यह तब तक इसी स्थिति में रहेगी जब तक व्यक्ति

अपने अन्त:करण का परिष्करण प्रारम्भ नहीं करेगा। अन्त:करण के परिष्करण से तात्पर्य यह है कि इसे शुद्ध ऊर्जा एवं चेतना की उच्चतम स्थिति के समरूप करना होगा ताकि हम इस बात के प्रति सजग हो जायें कि वास्तव में हम जिसे परिष्कृत कर रहे हैं वह उसी ऊर्जा एवं चेतना का सृजन है।

आज मानव शरीर का पूर्ण विकास हो चुका है। वह नाटा या लम्बा, मोटा या पतला हो सकता है, लेकिन क्रमविकास की अगली अवस्था का सम्बन्ध चेतना के क्षेत्र से है। श्री अरविन्द ने 'उच्च मानव जाति' की बात कही है, यह तब होगा जब मनुष्य उच्च मन की अवस्था को प्राप्त कर लेगा। 'उच्च मानव जाति' से अभिप्राय यह है कि मनुष्य का मानसिक, भावनात्मक, विवेक-सम्बन्धी और सबसे ऊपर, आध्यात्मिक विकास अपनी पराकाष्ठा पर होगा। वर्तमान में ये क्षमताएँ अपनी प्रारम्भिक अवस्था में हैं और हम अभी भी उनकी जटिलताओं से संघर्ष कर रहे हैं। इस क्षेत्र में हमारी सफलता अपने अन्त:करण के शुद्धिकरण, उसे प्रदीप्त करने और उसके कार्यों को एकीकृत करने की हमारी कुशलता पर निर्भर करती है।

अन्त:करण एक अत्यन्त सूक्ष्म ट्रान्समिटर के समान कार्य करता है जो प्रभावों को ग्रहण करता है और उनका संचरण करता है। आपके उपकरण के परिष्करण पर ही उसके कार्य की स्पष्टता एवं सूक्ष्मता निर्भर करेगी। यदि यह स्थूल स्पन्दनों के साथ अनुकूलित है तो ट्रान्समिटर उसे ही परावर्तित करेगा। यदि यह सूक्ष्मतम

ब्रह्माण्डीय स्पन्दनों से अनुकूलित हो जाता है तो आप न केवल अपने अस्तित्व के पीछे छिपे रहस्यों को ढूँढ निकालेंगे, बल्कि उन पहेलियों को भी सुलझा लेंगे जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में बिखरी हुई हैं।

मनुष्य कार्य और कारण के बीच झूलता हुआ कोई अलग अस्तित्व नहीं है, बल्कि वह तो ब्रह्माण्डीय योजना का एक अभिन्न अंग है, जिसकी प्रत्येक कण के सृजन में एक विशेष भूमिका होती है। अन्त:करण इस भूमिका को समझने के प्रयास में हमारी महत्त्वपूर्ण ढंग से मदद करता है।

इस सूक्ष्मतम उपकरण को हमने एक के बाद दूसरे अनेक जन्मों की यात्रा के दौरान स्वयं तैयार किया है। इस प्रकार अन्त:करण संस्कारों को संचित रखता है, जिन्हें हम एक जन्म से दूसरे जन्म में साथ लिए जाते हैं। एक वाद्ययंत्र के समान यह इतना संवेदनशील होता है कि सूक्ष्मतम स्पन्दनों को भी ग्रहण कर लेता है, और हमारे चेतन ज्ञान के होते हुए भी यह ऐसा करता है। आप अपने अन्दर बन रहे कुछ विशेष संस्कारों के प्रति चेतन रूप से सजग नहीं भी हो सकते हैं, किन्तु आपका अन्त:करण हमेशा चौकन्ना रहता है।

यह आपका अन्त:करण है जो आपके पूर्व अनुभव या ज्ञान के आधार पर आपके कार्य की दिशा का निर्णय लेता है। वहाँ पर जो विवरण अंकित होता है वह ऐसा अंश है जो तब तक स्वयं आपके सम्मुख प्रकट नहीं हो सकता है जब तक ब्रह्माण्डीय सजगता और आन्तरिक आँखें एवं कान प्राप्त नहीं हो जाते, जो ब्रह्माण्डीय ध्वनि और दृश्य के सूक्ष्म स्पन्दनों को समझ पाते हैं। इसलिए हमें केवल यह नहीं ढूँढ निकालना है कि अन्त:करण में क्या संचित है, बल्कि यह भी सीखना है कि उसे किस प्रकार नियन्त्रित करना है। योग और तंत्र वह एकमात्र विद्या है जिसने हमें इसका उत्तर दिया है।

अन्त:करण वह उपकरण है जिसके द्वारा चेतना अपना ब्रह्माण्डीय खेल चला रही है, जिसे हम उसकी लीला कह सकते हैं। चेतना सब में एक समान होती है—शुद्ध, उद्भासित और प्रदीप्त। यह स्वयं को किस प्रकार अभिव्यक्त करती है, यह इस पर निर्भर करेगा कि इसने अपनी लीला के लिए जिस माध्यम का प्रयोग किया है वह कितना सूक्ष्म, स्पष्ट और प्रखर है। दो भिन्न लोगों में समान प्रेरणा, समान विचार और समान क्रिया हो सकती है, लेकिन उनकी अभिव्यक्ति, उनकी कार्यशैली और अन्तिम परिणाम पूर्णत: उन दोनों व्यक्तियों के मानसिक स्तर, बुद्धि और अहंकार पर निर्भर करेंगे।

मन के आयाम

योग में मन को चार अवस्थाओं में विभाजित किया गया है—जाग्रत (चेतन), स्वप्न (अवचेतन), सुषुप्ति (अचेतन) एवं तुरीय (गुणातीत)। इस प्रकार योग चार स्तरों

वाले मन की बात करता है जब कि आधुनिक मनोविज्ञान ने सजगता को तीन स्तरों में ही सीमित कर दिया है—चेतन, अवचेतन एवं अचेतन।

अन्त:करण चेतन, अवचेतन एवं अचेतन क्षेत्रों के माध्यम से कार्य करता हुआ स्थूल, सूक्ष्म और कारणात्मक अनुभवों को उत्पन्न करता है। चूँकि अन्त:करण का विकास सत्त्व, रजस् एवं तमस्, इन तीन गुणों के मिश्रण से हुआ है, इसलिए वहाँ होने वाले अनुभव मुख्यत: इन तीन ब्रह्माण्डीय तत्त्वों के व्यापक प्रभाव पर निर्भर करेंगे। मनस्, चित्त, बुद्धि और अहंकार का व्यवहार सत्त्व के प्रभाव में रजस् एवं तमस् से भिन्न होता है और इस प्रकार वे सजगता की तीन अवस्थाओं में भिन्न प्रकार से प्रकट होते हैं। मनस् एवं चित्त चेतन एवं अवचेतन सजगता के अंग हैं और जाग्रत एवं स्वप्न अवस्थाओं की क्रियाओं तथा विचारों को नियन्त्रित करते हैं। बुद्धि एवं अहंकार जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति अवस्थाओं के परिष्करण की विभिन्न श्रेणियों में उपस्थित रहते हैं।

यह स्पष्ट है कि सजगता की इन तीनों अवस्थाओं में अन्त:करण तीनों गुणों के प्रभाव में रहता है। जिस क्षण जिस गुण की प्रधानता रहती है उस क्षण वह स्वयं को उसी के अनुरूप परिवर्तित कर लेता है। किन्तु चौथी अवस्था, अर्थात् तुरीयावस्था में गुण किसी भी प्रकार का प्रभाव डालना बन्द कर देते हैं, और इस प्रकार, सजगता पिछली तीन अवस्थाओं में अन्त:करण में हो रही अस्थिरता से परे निकल जाती है। यह साधना के द्वारा अन्त:करण की क्षमता के पूर्ण विकास से ही प्राप्त हो पाता है।

योग और तंत्र की गहन साधनाओं से अन्त:करण की भूमिका स्पष्ट हो जाती है। साधक को इस शक्तिशाली उपकरण की क्रियाओं एवं इसकी पूरी क्षमता को आध्यात्मिक उपलब्धि के लिए निर्दिष्ट करने की विधि का बोध हो जाता है।

बुद्धि

बुद्धि को महत् तत्त्व के नाम से भी जाना जाता है और ऐसा कहा जाता है कि यह शुद्ध चेतना की निकटतम कार्यशक्ति है। जब बुद्धि को ऐन्द्रिक सुखों या विलासिता की ओर मोड़ दिया जाता है तो यह आत्मा को बन्धनयुक्त कर देती है, किन्तु जब इसे विरक्तिसम्पन्न कर दिया जाता है तो आत्मा मुक्ति की ओर अग्रसर हो जाती है। दैनिक जीवन में बुद्धि ही आपको आपके धर्म के अनुरूप चलने के लिए प्रेरित करती है। बुद्धि के कारण ही किसी भी कार्य का मूल्यांकन परिशुद्धता एवं यथार्थता के साथ किया जाता है।

उच्चतर स्तर पर बुद्धि स्वयं को प्रज्ञा एवं वैराग्य के रूप में प्रकट करती है। यद्यपि ये उदात्त गुण बुद्धि में अन्तर्निहित होते हैं, किन्तु माया के प्रभाव से और अहंकार, इन्द्रियों एवं तीन गुणों के सम्पर्क के कारण इनमें बदलाव आ जाता है।

बुद्धिमानी, वैराग्य, विवेचन, सहनशीलता, शान्ति, आत्मनिग्रह, विवेक एवं चिन्तन-मनन सात्त्विक बुद्धि की विशेषताएँ हैं। सात्त्विक अवस्था में बुद्धि विचलनमुक्त हो जाती है और एक साक्षी की भूमिका ग्रहण कर लेती है। रजस् के प्रभाव से दोष उत्पन्न होने लगते हैं। इसके परिणामस्वरूप बुद्धि अपने विवेक का उपयोग नहीं कर पाती है, और त्रुटिपूर्ण जानकारियों एवं अज्ञान के द्वारा निर्णय प्राय: दूषित और भ्रामक हो जाते हैं। तामसिक बुद्धि अहंकार के प्रभाव में आ जाती है और भ्रान्तिजनक जानकारियों एवं गलत निर्णयों का आवरण इस पर पड़ जाता है।

साधना में हम बुद्धि की सात्त्विक प्रकृति पर ध्यान करते हैं ताकि तामसिक एवं राजसिक प्रवृत्तियाँ, जो इसकी वास्तविक प्रकृति नहीं हैं और जो सात्त्विक बुद्धि को कार्य करने से रोकती हैं, दूर हो जाती हैं। इस प्रकार साक्षी होने की अनुभूति को बल मिलता है।

अहंकार

अहम् का अर्थ है 'मैं', और 'मैं' के होने का भाव अहंकार है। अहंकार के जन्म के साथ ही एक सत्ता का अस्तित्व प्रकट होता है और हर स्तर पर एकीकरण टुकड़े-टुकड़े

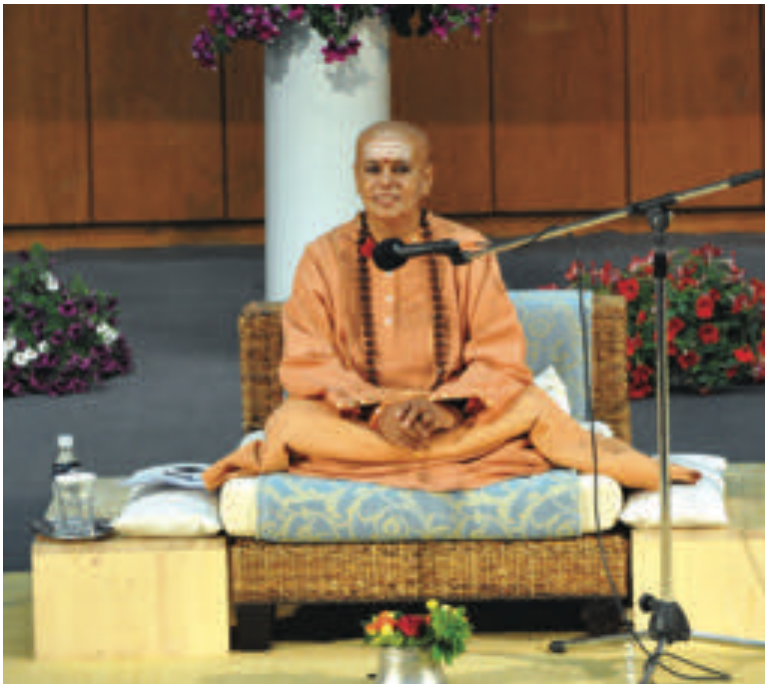

हो जाता है तथा व्यक्ति स्वयं को सम्पूर्ण सृष्टि से अलग देखने लगता है। अहंकार के अन्दर वैयक्तिकता का बीज छुपा होता है जिससे अपनी पहचान बनाने की तथा वस्तुओं एवं व्यक्तियों के प्रति आसक्ति की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। अहंकार आपके रोम-रोम में प्रवेश कर जाता है। यह अत्यन्त सूक्ष्म ढंग से प्रकट होता है और यह जो जाल बुनता है उसके बन्धन में मनुष्य अनेक जन्मों तक बँधा रह जाता है।

अहंकार व्यक्ति के अस्तित्व का केन्द्र बन जाता है। केवल अहंकार के कारण आप अपने आस-पास की वस्तुओं से सम्बद्ध हो पाते हैं। यदि आप में अहंकार नहीं होता तो आप भी किसी पौधे या सब्ज़ी की भाँति होते और आपको भी अपने अस्तित्व का कोई ज्ञान नहीं होता। यह सृष्टि का विरोधाभास है कि एक ओर अहंकार आपको वस्तुनिष्ठ अनुभवों से बाँधता है और दूसरी ओर यह ऐसा नाभिक है जिसका विस्फोट कर एकीकृत सत्ता को जाग्रत किया जाता है।

जाग्रत या चेतन अवस्था में अहंकार स्थूल शरीर, अर्थात् इन्द्रियों एवं विचारशील मन के माध्यम से कार्य करता है। अवचेतन अवस्था या स्वप्न में अहंकार सूक्ष्म शरीर और स्वप्न के माध्यम से कार्य करता है। जब आप गहरी निद्रा, सुषुप्ति में होते हैं तब यह बीज के रूप में कारणात्मक शरीर में निष्क्रिय हो जाता है, किन्तु ध्यान में यह आन्तरिक सजगता का रूप ग्रहण कर लेता है। अहंकार इतनी गहराई में जड़ जमाये हुए रहता है कि यह सविकल्प समाधि की अवस्थाओं में भी पहुँच जाता है।

अहंकार की क्रियायें सत्त्व, रजस् एवं तमस् के द्वारा प्रभावित होती हैं। सात्त्विक अहंकार 'अहम्' की अवधारणा के लिए उत्तरदायी होता है और यह आत्मानुभूति की प्रक्रिया में प्रेरक का कार्य करता है। अहंकार अवचेतन मन में संस्कारों को उत्तेजित करता है, किन्तु यह सत्त्व के प्रभाव के कारण अस्थायी रूप से इस क्रिया को रोक देता है।

राजसिक अहंकार एक क्रियात्मक शक्ति है जो व्यक्ति में 'अहम्' को जगाती है जिससे अत्यधिक क्रियाशीलता और व्यग्रता उत्पन्न हो जाती है। इसके परिणामत: विचारों और क्रियाओं का अपव्यय और क्षय होता है। तामसिक अहंकार दु:खदायी और नकारात्मक संस्कारों को बढ़ा देता है जिससे सन्देह, आशंका, भय और कार्य को विलम्ब से करने या टालने की प्रवृत्ति का जन्म होता है।

अहंकार को जीवात्मा के लिए बन्धन और मुक्ति, दोनों का स्रोत माना जा सकता है। यद्यपि यह व्यक्ति की जीवन यात्रा में उसके साथ लम्बे समय तक बना रहता है, किन्तु साधना के द्वारा व्यक्ति धीरे-धीरे इसके नकारात्मक तत्त्वों को परिष्कृत कर सकता है। योगाभ्यास द्वारा हम अहंकार की सूक्ष्म प्रकृति के प्रति अधिक सजग हो जाते हैं, जिससे स्वयं को इसकी निम्नतर क्रियाओं से दूर कर पाना सरल हो जाता है।

मनस् एवं चित्त

मनस् एवं चित्त बाह्य मन और मानस-द्रव्य के प्रतीक हैं, अर्थात् वह तत्त्व जो जाग्रत और स्वप्न की अवस्थाओं में प्रत्यक्ष रहता है। चित्त वह स्थान है जहाँ संस्कार एवं स्मृतियाँ अनुभूतियों के रूप में स्थित होती हैं। मनस् या विचार-प्रतिविचार उनके वाहन हैं या उनकी अभिव्यक्ति के माध्यम। मनस् एवं चित्त स्वयं कार्य नहीं करते हैं। वे बुद्धि के तर्कपूर्ण विचारों और अहंकार की आग्रही प्रवृत्ति द्वारा निर्दिष्ट होते हैं।

मनस् की यह अन्तर्भूत विशेषता है कि यह रजोगुण के नियन्त्रण में रहता है। यह हमेशा उद्विग्न और विचलित रहता है। जिस प्रकार एक बच्चा एक खिलौने को उठाता है, लेकिन तुरंत उसे रखकर दूसरा उठा लेता है, ठीक उसी प्रकार मनस् की यह प्रवृत्ति होती है कि यह एक विचार से उछल कर दूसरे विचार पर चला जाता है।

यह राजसिक प्रवृत्ति तब परिवर्तित हो जाती है जब मनस् अहंकार के प्रभाव से तामसिक अवस्था में आ जाता है या बुद्धि के प्रभाव से सत्त्व की अवस्था में आने पर रूपान्तरित हो जाता है। इस प्रकार, अहंकार एवं बुद्धि मनस् के द्वारा चित्त में संचित संस्कारों का उपयोग करते हुए सुख या दु:ख, क्लेश या आनन्द की अनुभूति उत्पन्न करते हैं।

मनस् की क्रियाओं में तीन गुणों के प्रभाव से निरन्तर परिवर्तन आता रहता है। सात्त्विक अवस्था में मनस् स्थिर, एकाग्र और केन्द्रित हो जाता है। राजसिक प्रभाव से मनस् इन्द्रियों को उत्तेजित और बुद्धि को भ्रमित कर देता है। तामसिक मनस् बुद्धि और इन्द्रियों को आलसी और निष्क्रिय बना देता है।

चित्त को कभी-कभी उच्चतर मन भी कहा जाता है, लेकिन यहाँ केवल स्मृति के रूप में इसके कार्य से हमारा सम्बन्ध है। सत्त्व के प्रभाव से चित्त में संचित संस्कार निष्प्रभावी हो जाते हैं ताकि चेतना शान्त और अविक्षुब्ध रहे। रजोगुण के प्रभाव से राजसिक संस्कार विकल्प (कल्पना) एवं विपर्यय (दोषपूर्ण ज्ञान) के रूप में जाग उठते हैं। इस अवस्था में चित्त ज्ञान एवं अज्ञान, आसक्ति एवं अनासक्ति, दोनों प्रकार के संस्कारों को धारण करता है।

जब तमस् चित्त को प्रभावित करता है तब अवांछित संस्कार जाग उठते हैं। इस प्रकार, व्यक्ति वासनाओं के नियन्त्रण में आ जाता है और सभी अच्छे संस्कार विस्मृत हो जाते हैं। केवल चिन्तन-मनन, धारणा एवं ध्यान की प्रक्रिया के द्वारा अवांछित संस्कारों को समाप्त किया जा सकता है।

हमें यह समझना चाहिए कि आत्मानुभूति प्राप्त करने का मुख्य मार्ग अन्त:करण में ही अन्तर्निहित है। अपने विकास की दिशा को पूरी तरह अपने नियन्त्रण में रखने के लिए हमें यौगिक एवं तांत्रिक साधना का सहारा लेना होगा। इसके अभ्यास से हम अन्त:करण की छिपी हुई शक्ति का उपयोग कर सजगता को स्थूल अनुभवों से दूर ले जाते हुए उच्चतर अनुभूतियों की ओर जाने के लिए निर्दिष्ट करते हैं।

पंचम अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस
21 जून 2019

2 BIHAR GIRLS BN NCC
INTERNATIONAL DAY OF YOGA

ललित कला–ध्यान योग का माध्यम

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

मन को एक बिन्दु पर केन्द्रित करने के लिए किसी योगाभ्यासी को पातंजल योग का कड़ा अभ्यास करना पड़ता है, जबकि वही मानसिक एकाग्रता एक चित्रकार (जिसे ब्रश-योगी भी कह सकते हैं) को बहुत ही सरलता और सहजता से प्राप्त हो जाती है। उसके सामने आने वाले प्राकृतिक दृश्यों से या उसकी अपनी अन्त:प्रेरणा से उसकी मानसिक वृत्तियाँ शीघ्र ही शान्त हो जाती हैं और उसके मन में केवल अद्‌भुत सौन्दर्य की वृत्ति शेष रह जाती है। यह अद्‌भुत सौन्दर्य ईश्वर के स्वरूप की निकटतम अभिव्यक्ति है। अनुभव एवं सूक्ष्म अवलोकन के द्वारा कलाकार हर वस्तु की विशेषता को खोज निकालता है। इन वस्तुओं में पूर्ण सौन्दर्य की तलाश कर रहा वह चित्रकार, इन वस्तुओं की मुख्य विशेषताओं को जोड़कर एवं उनके सभी दोषों को हटाकर एक ऐसी वस्तु का निर्माण करता है, जिसका सौन्दर्य आदर्श होता है। इस प्रक्रिया में जो पद्धति वह अपनाता है, वह वस्तुत: वही होती है जो एक ज्ञान योगी उस परम चेतना तक पहुँचने में अपनाता है, यथा इन्द्रिय वस्तुओं की परस्पर विरोधाभासी कमियों को नकारते हुए, इन कमियों के परे स्थित विशेषताओं का ध्यान रखते हुए एवं अन्त में इन विशेषताओं में गहरे उतरकर उस पूर्ण परमात्मा की खोज। ज्ञानी अपनी साधना गुफा में करता है, जबकि चित्रकार अपने स्टूडियो में।

आदर्श सुन्दरता की यह खोज चित्रकार की सीमित बुद्धि का परिणाम नहीं है। कोई भी चित्रकार अपनी सीमित बुद्धि के अथक प्रयासों के बावजूद भी इस आदर्श सौन्दर्य को नहीं पा सकता है। आदर्श सौन्दर्य वह प्रकाश है, जो उसकी चेतना में तब उतरता है जब बुद्धि कार्य करना बन्द कर देती है। प्रकृति में व्याप्त अपूर्णताओं के मूल में स्थित पूर्णता पर दीर्घकालीन एकाग्रता एवं 'नेति-नेति' सिद्धान्त के लगातार अभ्यास, जिससे सभी दोषों और अपूर्णताओं को 'यह नहीं, यह नहीं' कहकर नकार दिया जाता है, के द्वारा अन्त में चित्रकार पराचेतना के क्षेत्र में पहुँचता है, जहाँ अनजाना सत्य उसके हृदय में प्रकट होता है। इस प्रकाशित हृदय में असली कला का जन्म होता है। इस प्रकार एक चित्रकार ध्यान योगी या राजयोगी ही है।

आदर्श सौन्दर्य तक पहुँचने की इस प्रक्रिया में कलाकार को किसी वस्तु या विचार विशेष से आसक्त नहीं होना है। सच्चे कलाकार को विवेक की तलवार से युक्त होना चाहिए, जिससे वह निर्दयतापूर्वक उन सभी दोषों एवं सीमाओं को हटाता जाए, जिनके कारण सभी वस्तुओं के मूल में स्थित पूर्ण सत्य का प्रकाश आच्छादित रहता है। वह जैसे ही किसी वस्तु को देखता है, वैसे ही सत्य को रूप से, मूल को आवरणों से और पूर्णता को सीमाओं से पृथक् कर देता है। भले ही

प्रथमत: वस्तु ने उसे प्रेरित किया, परन्तु उसकी आन्तरिक चेतना ने वस्तु के बाह्य स्वरूप को ग्रहण न करके उसके मूल में स्थित सत्य को ग्रहण किया। ज्ञान का यह प्रकाश उसके पूर्व अर्जित ज्ञान के साथ संग्रहित हो जाता है और उसके आदर्श का चित्र अधिक स्पष्ट होता जाता है। शीघ्र ही एक अवस्था आती है, जब कलाकार यह अनुभव करता है कि उसकी कला उस सीढ़ी का प्रथम सोपान है, जिसके सबसे ऊपरी सोपान पर उसका लक्ष्य है। वह अनुभव करता है कि कला ने सत्य की खोज के लिए ही उसकी दृष्टि अन्दर की ओर मोड़ दी है। अब खोज की दिशा पूरी तरह बदल जाती है। आदर्श सौंदर्य केवल आत्मा में स्थित है। उसके पश्चात् वह उस कला को भी छोड़ देता है, जो उसे आत्म-साक्षात्कार के दहलीज तक लेकर आई और तब अपनी आत्मा का अनुभव करने के लिए प्रयास करता है। वास्तव में इस गौरवशाली ब्रश-योगी का लक्ष्य वही है। ब्रश-योग में केवल चित्रकारी कला ही नहीं, बल्कि मूर्तिकारी, भवन निर्माण, फोटोग्राफी, नृत्य इत्यादि भी आते हैं।

यदि आप किसी कला के जन्म के विभिन्न चरणों को देखेंगे तो पायेंगे कि कला अपने आप में एक उपासना है। सबसे पहले कलाकार अपने मन को तैयार करता है। उसका मन शान्त और स्थिर हो जाता है। यह स्थिति वैसी है, जैसी ध्यान की तैयारी के पूर्व साधक की होती है। इस शान्त मन से वह उस वस्तु के ऊपर विचार करना प्रारम्भ करता है, जिसे वह अपनी कला के माध्यम से प्रस्तुत करना चाहता है। यह ध्यान की शुरुआत है। तीसरा क्रम तब आता है, जब वह वस्तु कलाकार की चेतना में एक प्रतीक रूप में स्थित हो जाती है। नाम और रूप का अब कोई अर्थ नहीं रह जाता तथा कलाकार की चेतना में एक प्रतीक का, एक आदर्श का जन्म होता है। कलाकार की आन्तरिक चेतना में उत्पन्न हुआ यह प्रतीक अपनी तरह के दूसरे अनेक आदर्श विचारों को आकर्षित करता है। यही ध्यान है। अगला क्रम, यदि उसे एक क्रम कहा जाए, विचार के परे है। यह अन्त:प्रेरणा का क्षेत्र है। कला का आदर्श रूप चित्रकार की चेतना में अन्त:प्रेरणा से जन्म लेता है। यह समाधि की तरह है। तब चित्रकार बाह्य चेतना में वापस आता है और अपने दर्शन को एक कला का रूप देने का विचार करता है। इसके लिए वह साधन और प्रक्रिया का चुनाव करता है। यह एक संत के लोकसंग्रह कर्म के समान है। अन्त में कलाकार अपनी चेतना में अन्त:प्रेरणा से उभरने वाले प्रतीक को कैनवास पर या पत्थर पर स्वरूप प्रदान करता है। यही एक जीवनमुक्त का वास्तविक लोकसंग्रह कर्म है। किसी भी कलाकृति में स्वभाव से ही प्रक्रियात्मक त्रुटियाँ होती हैं, क्योंकि कलाकार का वह अन्त:प्रेरित साक्षात्कार इस सांसारिक धरातल से बहुत ऊँचा होता है और किसी भी ब्रश से उसका चित्र बनाना या छेनी से उसको आकृति देना संभव नहीं है। यही वह कारण है जो असन्तुष्ट कलाकार को हर बार पहले से बेहतर करने की प्रेरणा देता है, और अन्तत: अपनी आत्मा की अलौकिक सुन्दरता को खोज निकालने की प्रेरणा देता है।

कलाकार एक बहुत महान् कर्मयोगी भी होता है। एक महान् कलाकृति से कितनों के हृदय में ईश्वर के प्रति श्रद्धा जागृत होती है। चित्रकारों के द्वारा बनाई गई प्रभु की तस्वीरें कितनी अद्‌भुत होती हैं! ये चित्र इतने आकर्षक होते हैं कि साधक बहुत आसानी से प्रभु की छवि पर एकाग्र हो जाता है और उनका ध्यान करके उन्हें पा लेता है। चित्र उससे बातें करता है! यह चित्र नहीं, बल्कि उसमें स्थित स्वयं भगवान है। ऐसी प्रेरणादायक तस्वीरें बनाना विश्व की एक महान् सेवा है। इन कलाकारों ने विश्व की महानतम सेवा की है। वे महान् योगी हैं। ऐसे ब्रश-योगियों की जय हो! प्रभु उन्हें आशीष दें।

साकार उपासकों का अनन्य योग

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

परमात्मा तो एक ही है। वह जो है, सो ही है। इन्द्रियानुभूति द्वारा उसके ज्ञान को साकार माना जाता है। साकार भाव को दृष्टि-दोष नहीं मानना चाहिए, क्योंकि वह भाव-दृष्टि है। यह जानते हुए भी कि परमात्मा अन्तहीन है, हम उसके परिच्छिन्न भाव को ही ग्रहण कर पाते हैं। ऐसा क्यों होता है? क्या वह साकार भी है? जिसने अपरोक्षानुभूति की हो, वह साकार को भी परमात्म-तत्त्व का ही अवान्तर रूप समझेगा। या यूँ कहिये, जैसे अनन्त में कई अन्त संयुक्त हैं, सिन्धु में अनेक बिन्दु भरे हैं, वैसे ही यह सब परमात्म-तत्त्व का ही अलग-अलग रूप है।

अरूप की कल्पना मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ कर ही नहीं सकतीं। यदि करेंगी भी तो वह अरूप नहीं हो सकता। इसमें शक नहीं कि वह अनिर्वचनीय और सर्वव्यापक है, तथापि जीव उसका गुणगान तो करेगा ही। 'हे प्रभो, तुम अनिर्वचनीय हो' कहकर हम वाणी से ही तो उसकी अनिर्वचनीयता घोषित करते हैं। वह सर्वव्यापक तत्त्व है, परन्तु उसका ग्रहण हो तो कैसे? सर्वव्यापक मान लेने से ही काम नहीं चलेगा, उसका अन्तर्दर्शन भी करना होगा। और जहाँ तुमने प्रभु की सत्ता की सर्वव्यापकता का दर्शन अपने अन्दर किया, वहाँ वह तीर्थ रूप बन गया।

असल बात यह है, प्रभु को धारण करने की दो प्रक्रियाएँ हैं—साकार और निराकार। एक ही परमात्मा के दो विशिष्ट परिचय हैं, साकार और निराकार। अन्तर केवल इतना है कि निराकार उपासना कठिन है और साकार सरल, निराकार टेढ़ा और साकार सीधा। साकार उपासना में साधारण-से-साधारण मनुष्य का मन भी स्थिर हो जाता है, जबकि निराकार इने-गिने लोगों के लिए है। जिनकी आत्मा समता में स्थिर हो गयी है, वे ही निर्गुण ब्रह्म की उपासना कर सकते हैं। परमात्मा में मन लग गया हो, बुद्धि समाहित हो गई हो, आत्मा का लय हो गया हो, पाप-ताप मिट गये हों, ऐसे साधक ही निर्गुण भाव की साधना कर सकते हैं।

यद्यपि दोनों उपासक मोक्ष के समान अधिकारी हैं, तथापि साध्यता के दृष्टिकोण से साकार उपासना सरल और प्रशस्त है, क्योंकि साकार में प्रीति, सुख, रुचि और एकाग्रता का भाव आ ही जाता है। यदि साधक साकार प्रतीक में चित्त को लीन नहीं कर सका, तो क्या वह अरूप, अक्षर, अतीन्द्रिय और कूटस्थ की उपासना कर सकता है? वैराग्य के अभाव में निराकार नहीं सधता। शरीर, वर्ण, धन तथा अविद्याजनित अभिमानों को त्याग कर ही निराकार की उपासना की जा सकती है। एक तम्बाखू की लत तो छूटती नहीं, करने जा रहे हैं निराकारोपासना! साकार में चित्त की वृत्तियों का लोप नहीं होता, वे एकाग्र हो जाती हैं। विवेकख्याति के बाद

परा-वैराग्य द्वारा उनका निरोध किया जाता है। निराकार में किंचित-मात्र भी तमोगुण रहा, तो वृत्ति लय के साथ-साथ निद्रा का अवतरण होता है। तब साधक के लिए बड़ी समस्या खड़ी हो जाती है।

कुछ लोग सोचकर कहते हैं कि साकार का उपासक आगे नहीं बढ़ता, परन्तु मैं अपने अनुभव के बल पर कहता हूँ कि साकार का उपासक निर्विकल्प की उस अवस्था तक पहुँचता है जहाँ से व्युत्थान सम्भव नहीं। साकार उपासना चित्त की एक वृत्ति को आधार बनाकर चलती है, जो बाद में स्वत: निरुद्ध हो जाती है। 'रूप सागरे डूबे दिये छि अरूप रतन पाव बोले' अर्थात् रूप सागर में डुबकी लगाई है, अरूप रतन को पाने के लिए।

साकार उपासना केवल राम या कृष्ण की उपासना को नहीं कहते, बल्कि बुद्धि द्वारा जिस भी आकार या भाव की मन में धारणा की जाए, साकार उपासना ही है। ॐ, क्रॉस, नाद, बिन्दु, नाम, फूल, मन्त्र, गुरु, षट्चक्र अथवा किसी भी आकार वाली वस्तु को वृत्ति का आधार बनाने का नाम है साकारोपासना। 'ॐ' का आकार दर्शनीय और मननीय होता है। नाद का आकार श्रवणीय और मननीय होता है। मन्त्रों का आकार मननीय, वचनीय, श्रवणीय और दर्शनीय होता है। गुरु का आकार स्पर्श्य भी होता है। अत: गुरु का आकार साकारोपासना में सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

निराकार के उपासकों को मोहाभिमान त्याग कर नित्य, कूटस्थ, अचल, अक्षर, अज, अमर और विश्वव्यापी सत्ता के सत्, चित् और आनन्द भाव पर चित्त

को एकाग्र करना चाहिए। इन्द्रियाँ अपने वश में हों, पूर्वार्जित पुण्य प्रबल हों, संकल्पजनित कामनाओं का नाश हो चुका हो, द्वन्द्वाभास हट गया हो, ऐसा साधक आसन लगाते ही अन्तर्मुख हो जाता है। जैसे थके-माँदे मुसाफिर को सोने का प्रयत्न नहीं करना पड़ता, लेटते ही निद्रा अपने आप आ जाती है, वैसे ही संयमी साधक को आसन पर बैठते ही अन्तर्मुख अवस्था स्वभावत: ही प्राप्त होने लगती है। जैसे अभ्यस्त ड्राइवर को मोटर चलाने में स्वाभाविक क्रिया मात्र करनी पड़ती है, वैसे ही संयमी साधक को अपने में प्रवेश करने के लिए कोई अस्वाभाविक साधना नहीं करनी पड़ती। वैराग्य तीव्र हो गया हो, कामनाओं के प्रति उदासीनता प्रवृत्त हो गई हो, पंच-विषयों से परामुखता आ गई हो, निर्विचार अवस्था अपने-आप रहती हो, यह अवस्था है निराकार के उपासकों की।

प्रभु को हमने मूर्ति का विषय, स्तुति का विषय, तीर्थों का विषय भी माना है। हम निराकार और साकार, दोनों को स्वीकार करते हैं, दोनों को मोक्ष का साधन मानते हैं, दोनों को अनिर्वचनीय परमेश्वर का वचनीय परिचय भी मानते हैं, किन्तु साधना की सरलता, सुगमता और विशालता के दृष्टिकोण से साकार को निराकार की अपेक्षा अधिक उपादेय मानते हैं। 'विवेक चूड़ामणि' का अध्ययन करो। बहुत सी-बातें समझ में आयेंगी। कुछ-न-कुछ अध्ययन अवश्य करना चाहिये जिससे सन्तों के उपदेशों को समझने में सहायता मिल सके।

साकार के उपासकों को यह भाव लाना चाहिये कि 'मैं कुछ नहीं करता हूँ, इन्द्रियाँ अपने धर्मों में बरत रही हैं।' साकार पन्थियों को कुछ भुलाना नहीं पड़ता। शरीर को प्रभु की सम्पत्ति मानकर चलना पड़ता है। कर्मों को प्रभु की प्रेरणा मानकर करना पड़ता है। सुखों को प्रभु की देन समझकर स्वीकारना पड़ता है। दु:खों को प्रभु का आदेश समझकर सिर-माथे रखना पड़ता है। जीवन और मृत्यु, हानि और लाभ, सफलता और विफलता, धर्म और अधर्म, आस्तिक और नास्तिक—सभी को प्रभु के संकल्प की व्याप्ति जानकर अंगीकार करना पड़ता है। 'वे ही करा रहे हैं'—यह जानना चाहिए। साकारोपासक भक्तों को त्याग की जरूरत कतई नहीं है। जरूरत है कर्तृत्व के त्याग की। जिसमें परमेश्वर के प्रति अनन्य भाव होगा, वही भगवान को अपना सब कुछ समझ सकेगा। जो भगवान को ही सब कुछ समझेगा, वही अपने जीवनान्त कर्मों को भगवत्प्रीत्यर्थ कर सकेगा। यही भगवत्परायणता की श्रेष्ठतम साधना है, जिससे उपासक उत्तम गति को प्राप्त करता है।

अनन्य योग में तुम्हारा मन एक के ही साथ जुड़ा रहता है। जहाँ मन दो में गया, वहाँ योग भंग हुआ। अत: अनन्य का मतलब यह कि कर्त्ता, धर्त्ता, संहर्त्ता कोई अन्य नहीं, वही है। सभी कर्म, धर्म, अकर्म, अधर्म का करने वाला कोई अन्य नहीं, वही है। मेरा इस संसार में सच्चा साथी कोई अन्य नहीं, वही है। यह साकारोपासकों का अनन्य योग है।

योग में पंच-कोशों की अवधारणा

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

योग के अनुसार मनुष्य अपने अस्तित्व के पाँच आयामों का अनुभव कर सकता है, जिन्हें पंच कोश कहा जाता है। ये ऐसे पाँच क्षेत्र हैं जिनमें मनुष्य हर क्षण रहता है और इनका विस्तार स्थूल से सूक्ष्म तक होता है। ये पंच कोश अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोश हैं।

अनुभूति का पहला स्तर अन्नमय कोश या भौतिक शरीर है। अन्नमय का मतलब हुआ अन्न से बना हुआ। यह अस्तित्व का स्थूल स्तर है और अन्न, जल एवं वायु पर इसकी निर्भरता के कारण इसका उल्लेख अन्नमय कोश के रूप में किया जाता है। यह कोश प्राण पर भी निर्भर रहता है। जहाँ भोजन के बिना कुछ सप्ताह, जल के बिना कुछ दिन और वायु के बिना कुछ मिनट जीवित रहा जा सकता है, वहीं प्राण के निकलते ही जीवन समाप्त हो जाता है।

दूसरा है, प्राणमय कोश, जो व्यक्ति का ऊर्जा क्षेत्र होता है। इसमें अनुभूति का स्तर भौतिक शरीर से अधिक सूक्ष्म होता है। यह शरीर में व्याप्त होकर उसका सम्भरण करता है। इस कोश का पोषण इससे अधिक सूक्ष्म कोश करते हैं। भौतिक एवं प्राणिक शरीर मिलकर मानव शरीर की रचना करते हैं जिसे आत्मपुरी या आत्मा की नगरी कहा जाता है। ये उच्चतर शरीरों की अनुभूति के लिए पात्र का निर्माण करते हैं।

प्राणमय कोश प्राणायाम एवं प्राणविद्या के अभ्यासों का आधार है। इसका वर्णन भौतिक शरीर के प्राणिक, सूक्ष्म एवं अतीन्द्रिय पक्ष के रूप में भी किया जाता है। इसका आकार और आयाम लगभग अपने हाड़-मांस के शरीर के समान ही होता है, हालाँकि इसमें विस्तरण तथा संकुचन की क्षमता होती है। तैत्तिरीय उपनिषद् की ब्रह्मानन्द वल्ली में कहा गया है–

तस्माद्वाएतस्मादन्नरसमयात् । अन्योऽन्तर आत्मा प्राणमयः।
तेनैष पूर्णः। स वा एष पुरुषविध एव ।
तस्य पुरुषविधताम् । अन्वयं पुरुषविधः॥

अर्थात् भोजन के सारतत्त्व से बने इस भौतिक शरीर के अतिरिक्त एक अन्य आंतरिक प्राणिक शरीर है जो इस भौतिक शरीर में व्याप्त है। इस प्राणिक शरीर का आकार भी एक व्यक्ति के समान होता है।

सूक्ष्मदृष्टि वाले योगी प्राणिक शरीर को रंगीन, चमकीली आभा के रूप में शरीर के चारों ओर व्याप्त देखते हैं। उच्च वोल्टेज वाले किर्लियन उपकरण का उपयोग करने वाले शोधकर्त्ताओं को फिल्म पर इसी तरह के परिणाम मिले हैं।

प्राणिक शरीर भौतिक शरीर से अधिक सूक्ष्म होता है और इसके विखण्डन में अपेक्षाकृत अधिक समय लगता है। इसीलिए शरीर के किसी काटे गये अंग के ऊर्जा क्षेत्र को कुछ देर बाद तक भी अनुभव किया जा सकता है। जैसा कि किर्लियन फोटोग्राफी के प्रयोगों द्वारा दर्शाया गया है, ऊर्जा का यह स्रोत क्षतिग्रस्त हुए अंगों को स्वस्थ होने और अपने मूल आकार में वापस आने में मदद करता है।

तीसरा है मनोमय कोश, जो मानसिक आयाम है। इसकी अनुभूति का स्तर चेतन मन है जो दो स्थूल कोशों, अन्नमय एवं प्राणमय, को एक इकाई के रूप में जोड़े रहता है। यह बाह्य एवं आन्तरिक जगत् के बीच एक सेतु है। इसके माध्यम

से बाह्य जगत् की अनुभूतियाँ और संवेदनाएँ सूक्ष्म शरीर को, और सूक्ष्म शरीर के प्रभाव स्थूल शरीर को प्रेषित होते हैं।

चौथा है विज्ञानमय कोश, जो अतीन्द्रिय अनुभवों का आयाम है। यह अवचेतन और अचेतन मन से सम्बन्धित है। यह मनोमय कोश को व्याप्त किए रहता है, लेकिन उससे सूक्ष्म है। विज्ञानमय कोश वैयक्तिक एवं सार्वभौमिक मन के बीच की कड़ी है। आन्तरिक ज्ञान इसी स्तर से चेतन मन में आता है। जब यह कोश जाग्रत हो जाता है तब व्यक्ति को जीवन के अनुभव अन्तर्ज्ञान के रूप में होने लगते हैं, उसे दृश्यजगत् के पीछे छिपे सत्य का बोध होने लगता है। इससे प्रज्ञा की जागृति होती है।

पाँचवाँ आनन्दमय कोश है, जो आनन्द का स्तर है। यह कारण शरीर है जो सूक्ष्मतम प्राण का निवास है।

कोश एवं प्राण

पाँचों कोशों में प्राण व्याप्त हैं। प्राण ही उनका भरण-पोषण करता तथा उनके बीच अपेक्षित सम्बन्ध बनाए रखता है। एक से दूसरे कोश में आवागमन भी प्राण की मदद से ही होता है। कोशों के बीच प्राण की कार्यविधि को गाड़ी में गियर परिवर्तन के उदाहरण से समझा जा सकता है। एक से दूसरे गियर में न्यूट्रल से होकर जाना पड़ता है। गाड़ी को रोकने या पीछे करने के लिए पहले न्यूट्रल का प्रयोग किया जाता है। न्यूट्रल गियर नहीं है; गियर तो पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा और रिवर्स गियर हैं। लेकिन बीच के न्यूट्रल के स्थान पर गये बिना एक से दूसरे गियर में नहीं जाया जा सकता है। यही सिद्धांत कोशों पर भी लागू होता है।

अन्नमय से मनोमय, मनोमय से विज्ञानमय, विज्ञानमय से आनन्दमय कोश में विचरण करने के लिए प्राणमय कोश न्यूट्रल का कार्य करता है। व्यक्ति को एक से दूसरी अवस्था में जाने के लिए प्राण शक्ति की क्षमता का उपयोग करना होता है। इस प्रकार गियर बॉक्स में न्यूट्रल का जो स्थान होता है वही स्थान व्यक्ति के जीवन में ऊर्जा के आयाम का है। प्राण के सक्रिय होने पर व्यक्ति की पहुँच भौतिक, मानसिक, अतीन्द्रिय और आध्यात्मिक आयामों तक हो जाती है।

कोशों में आरोहण

योग साधक का उद्देश्य कोशों का क्रमशः भेदन करते हुए चेतना के उच्चतर स्तरों तक पहुँचना होता है। योग की सभी विधियाँ इस लक्ष्य को साधने में सहायक होती हैं। उदाहरण के लिए, हठयोग के षट्कर्म सीधे अन्नमय कोश को प्रभावित करते हैं और प्राण के प्रवाह को सुगम बनाते हुए चेतना को अगले स्तर, प्राणमय कोश तक पहुँचाने में मदद करते हैं। आसनों का भी ऐसा ही प्रभाव पड़ता है। वे अन्नमय कोश के अवरोधों को दूर करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप प्राणमय कोश

भी प्रभावित होता है। साधक आसनों के अभ्यास में ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता जाता है, उनका प्रभाव-क्षेत्र सूक्ष्मतर होता जाता है और प्राणमय कोश सीधे प्रभावित होने लगता है। प्राणायाम के अभ्यास प्राणमय कोश को प्रत्यक्ष रूप से और मनोमय कोश को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं।

प्रथम तीन कोशों के शुद्धिकरण के पश्चात् चौथे विज्ञानमय कोश का द्वार खुल जाता है जो अंतर्ज्ञान का कोश है। आनन्दमय कोश का कैसे और कब भेदन होता है, यह एक रहस्य ही बना हुआ है। सूक्ष्म अतीन्द्रिय क्षेत्रों में सामान्य कारण-कार्य का सिद्धान्त लागू नहीं होता है। फिर भी पाँचों कोश परस्पर जुड़े हुए हैं और यदि एक में कुछ होता है तो उसका प्रभाव दूसरों पर पड़ता है। प्राण शक्ति के जागृत एवं सक्रिय होने पर आरोग्यकारी क्षमता विकसित होती है, जिससे इस ऊर्जा का उपयोग जीवन के घावों को भरने में किया जा सके। मनोमय कोश के शुद्धिकरण के फलस्वरूप विचारों में स्पष्टता आती है और भावनाओं एवं अहंकार की संतुलित अभिव्यक्ति होती है। विभिन्न अवस्थाओं तथा परिस्थितियों को बेहतर ढंग से समझने की क्षमता विकसित होती है और बुद्धि एवं कर्म के क्षेत्र में अधिक सृजनात्मकता आ जाती है।

जब अन्नमय और प्राणमय कोश शुद्ध हो जाते हैं तब उनके तथा मनोमय कोश के बीच कोई अवरोध नहीं रह जाता। मन, शरीर और प्राण आपसी सामंजस्य से काम करते हैं जिससे विज्ञानमय कोश के आवरण को भेदा जा सकता है। जब इस सूक्ष्म कोश में प्रवेश होता है तब एकाग्रता तीव्र हो जाती है और मन के गहन आयाम सतह पर आ जाते हैं। अतीन्द्रिय अनुभूतियाँ होने लगती हैं तथा मन की

गहराइयों में दबे संस्कारों का निष्कासन हो जाता है। ज्यों-ज्यों विज्ञानमय कोश शुद्ध होता है, व्यक्तित्व में रचनात्मकता आती है तथा मानसिक स्पष्टता अनायास ही आ जाती है। इस अवस्था में मन वास्तव में रिक्त होकर आनन्दमय कोश की अनुभूति के लिए तैयार हो जाता है।

कोश सम्बन्धी चेतना

साधक को योगाभ्यासों का चयन उस कोश के आधार पर करना चाहिए, जहाँ चेतना मुख्य रूप से स्थित होती है। विभिन्न कोशों में चेतना के स्तर क्रमशः शरीर, जीवनी शक्ति, मन, चित्त और आत्मा से सम्बन्धित होते हैं। प्रत्येक साधक चेतना के इन पाँच स्तरों में से मुख्यतः किसी एक में स्थित होता है। यदि चेतना मुख्यतः अन्नमय कोश में है तो व्यक्ति निश्चित रूप से शरीर से ही आसक्त होगा, जिस प्रकार अनेक भोगवादी जीते हैं। यदि चेतना प्राणमय कोश में है तो व्यक्ति शक्ति और ऊर्जा से सम्बन्ध जोड़ेगा, जिस तरह खिलाड़ियों की प्रवृत्ति होती है। चेतना यदि मनोमय कोश में है तो विश्लेषणात्मक मन के साथ व्यक्ति का तादात्म्य होगा।

जब चेतना का विकास विज्ञानमय कोश तक हो जाता है, जहाँ तामसिक और राजसिक प्रवृत्तियाँ कम हो चुकी होती हैं, तब विवेक के माध्यम से ज्ञान में स्पष्टता आती है। यहाँ सभी अनुभूतियों को चित्त के प्रकाश में देखा जाता है और उनका महत्त्व प्रत्यक्ष की अपेक्षा गूढ़तर हो जाता है। इस आयाम में व्यक्ति उच्च चेतना की सूक्ष्म प्रकृति का अनुभव करने लगता है। जो आनन्दमय कोश से तादात्म्य स्थापित कर लेता है वह योगी है। वह अध्यात्म के क्षेत्र में विकसित हो चुका है, उसकी सभी अनुभूतियाँ आध्यात्मिक होती हैं।

साधक के जीवन की अनुभूतियाँ उसकी चेतना के विस्तार की द्योतक होती हैं। इनसे उसके विकास की परिधि का पता चलता है। चेतना के किसी एक कोश में स्थित होने पर भी अन्य कोशों में अवरोध विद्यमान रह सकते हैं। इसी कारण समन्वित योग के अभ्यास का परामर्श दिया जाता है। योग के प्रत्येक अंग पर कितना समय व्यतीत किया जाए, यह समय सीमा हर व्यक्ति के लिए भिन्न होती है और उसके विकास के स्तर एवं अवरोधों पर निर्भर रहती है। प्रत्येक कोश के लिए सही अभ्यासों का निर्धारण करने के लिए योग्य निर्देशन अनिवार्य है क्योंकि ये अभ्यास अन्य कोशों को भी प्रभावित करेंगे।

विभिन्न कोशों में प्राण का अनुभव

प्राणायाम एवं प्राणविद्या का अभ्यास करने वाले साधक का उद्देश्य प्राणमय कोश में तब तक कार्यरत रहना है जब तक प्राण शक्ति की सक्रियता और उसका बोध पर्याप्त रूप से सूक्ष्म होकर अन्य कोशों का भेदन करने योग्य न हो जाये। प्राणविद्या

की विधियाँ साधक को सूक्ष्मता के विभिन्न स्तरों पर सीधे प्राण को समझना और उसका अनुभव करना सिखाती हैं। प्राण के जाग्रत होने के बाद इसके प्रवाह, रूप, रंग और गुण का अनुभव सभी स्तरों पर होता है।

अन्नमय कोश के स्तर पर प्राण की अनुभूति स्नायविक ऊर्जा के रूप में होती है। अन्य कोशों में प्राण शक्ति की सजगता प्रत्याहार के द्वारा स्थूल शरीर तथा बाह्य वातावरण से परे जाकर विकसित होती है। मनोमय कोश में प्राण के बोध की तुलना उस घर से की जा सकती है जो रात्रि के समय प्रकाशित हो। उस प्रकाश का गुण और उसकी चमक मन की शुद्धता पर निर्भर रहती है। कुछ लोगों को मनोमय कोश का अनुभव रूप और आकार वाले प्रकाश जैसा होता है, जबकि दूसरों को वह एक केन्द्रीय स्रोत से प्रकट होते हुए चक्राकार प्रकाश जैसा लगता है।

सुव्यवस्थित ढंग से दीर्घ समय तक मनोमय कोश के स्तर पर किये गये अभ्यास विज्ञानमय कोश के द्वार खोल देते हैं। गहन ध्यान की अवस्था में दिव्य दृश्य, गंध या ध्वनि की अनुभूति विज्ञानमय कोश में प्राण के आविर्भाव का संकेत देती है। यद्यपि इस प्रकार की पहली अनुभूति से यह नहीं मान लेना चाहिए कि अभ्यास सफल हुए हैं, इसलिए अब इन्हें छोड़ देना चाहिए। जब सभी कोश परस्पर सामंजस्य के साथ कार्य करने लगते हैं तो एक छोटा-सा प्रयास भी थोड़ी अनुभूति दिला सकता है। अत: साधक को अपने अभ्यास में दृढ़ता से लगे रहना चाहिए, जब तक समग्र उपलब्धि प्राप्त न हो जाये। वस्तुत: एक बार जब विज्ञानमय कोश का द्वार खुल जाता है तब साधक को सर्वाधिक सतर्क और एकाग्र होने की आवश्यकता होती है क्योंकि विज्ञानमय कोश का क्षेत्र इतना विशाल, मनमोहक और चित्ताकर्षक होता है कि साधक उसमें दीर्घकाल तक भटकते रह सकता है।

जैसे-जैसे विज्ञानमय कोश दीर्घकालीन अभ्यास के द्वारा धीरे-धीरे शुद्ध होते जाता है, साधक को आनन्दमय कोश की झलक मिल सकती है—ऐसे क्षणों में सब कुछ प्रकाशमान दिखायी देता है। साधक को किसी प्रकाशमान शिवलिंग या ऐसी ही किसी वस्तु की झलक मिल सकती है। हालाँकि यह भी एक सापेक्ष अनुभूति है, क्योंकि साधक आनन्दानुभूति में केवल तभी स्थित हो सकता है जब उसका सम्पूर्ण मन परिष्कृत हो गया हो। इस स्तर पर अभ्यासों का उद्देश्य मन रूपी स्लेट को पूर्णत: स्वच्छ करना है। एक बार स्वामी सत्यानन्द सरस्वती ने कहा था, 'सम्भव है कि योगाभ्यासी का विज्ञानमय कोश विकसित हो गया हो, लेकिन जिसने योग का अंतिम परिणाम प्राप्त कर लिया हो, वह आनन्दमय कोश में स्थित रहता है।'

वास्तव में एक प्रबुद्ध योगी छठे कोश—आत्ममय कोश का अनुभव कर पाता है। यह ऐसी अवस्था है जहाँ आत्मा से ऐक्य की अनुभूति होती है और साधक को सम्पूर्ण जगत् सौन्दर्य, संतोष, आनन्द एवं सत्य से उत्पन्न हुआ प्रतीत होने लगता है। आत्ममय कोश में स्थित व्यक्ति को सिद्ध के रूप में जाना जाता है।

एकमासिक योग प्रशिक्षण के अनुभव

गंगा दर्शन में 1 से 30 मार्च तक बिहार योग भारती द्वारा एकमासिक योग प्रशिक्षण संचालित किया गया। इसमें सम्मिलित कुछ प्रतिभागियों के अनुभव यहाँ पर उद्धृत किए जा रहे हैं–

मैं पहले भी मुंगेर, रिखिया एवं अमरकण्टक स्थित बाबा कल्याणदास जी के आश्रम में रह चुका हूँ, परन्तु एक महीने की अवधि के लिए पहली बार रहा हूँ। इस दौरान अत्यन्त आनन्द का अनुभव हुआ। हठयोग के अभ्यासों को सजगता के साथ करने का अनुभव अद्‌भुत था, उससे स्वयं के अध्ययन में बहुत सहायता मिली। राजयोग के अभ्यासों से मन को समझने का मार्ग मिला तथा प्रतिपक्ष भावना से मन पर हो रहे नकारात्मक प्रभावों को दूर करने की समझ मिली। इस समझ के साथ कर्मयोग को पूरे मन से करने का प्रयास किया, चाहे वह झाड़ू लगाना हो या रसोई में कार्य करना हो या और कोई काम। कभी भी कर्मयोग के प्रति मन में नकारात्मक भाव नहीं आया। शाम छ: बजे से सुबह छ: बजे तक मौन के पालन एवं डिजिटल फास्टिंग के कारण मन अत्यन्त शान्त रहा, सजगता में वृद्धि हुई तथा स्वयं को समझने में मदद मिली। पहले योगाभ्यास दिनचर्या का हिस्सा था, परन्तु आश्रम जीवन से समझ में आया कि पूरी दिनचर्या ही योगमय है। अनेक अवसरों पर स्वामी निरंजनानन्द जी के सत्सगों का सौभाग्य प्राप्त हुआ एवं मन में जो भी प्रश्न होते थे उनके उत्तर स्वामीजी के सत्संगों में मिल जाया करते थे। निश्चित तौर पर एक महीने का यह प्रशिक्षण मेरे लिये अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हुआ है। मैं इस प्रशिक्षण के बाद दृढ़संकल्पित हूँ कि अब योग को सम्पूर्ण जीवनशैली के रूप में अपनाऊँगा।

– देवेन्द्र सिंह राठौर, जबलपुर

यहाँ एक महीने तक योग प्रशिक्षण प्राप्त कर और यौगिक वातावरण में रहकर मुझे शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक स्तर पर अनेक सकारात्मक परिवर्तन महसूस हुए। शारीरिक स्तर पर अनुभव किया कि पहले मेरा बाँया स्वर (इड़ा) अधिक चलता था पर अब अधिकतर समय दाहिना स्वर (पिंगला) चलता है। मैं वक्ष श्वसन करती थी पर अब जब भी सजग होती हूँ उदर श्वसन का अभ्यास करती हूँ। मेरा भोजन पहले से आधा हो गया है, स्वयं ही भोजन का एक-एक निवाला सजगता से लेने से पेट जल्दी भर जाता है जिसमें मौन का भी पूर्ण सहयोग मिला। मैं पहले से अधिक फुर्तीली, ऊर्जावान् हूँ। पहले मेरा शरीर बीमारियों का घर था पर अब मैं पूर्णत: स्वस्थ हूँ।

मानसिक और भावनात्मक स्तर पर अनुभव किया कि मन:प्रसाद और प्रतिपक्ष भावना के अभ्यास से अब दूसरों में नकारात्मक पक्ष की अपेक्षा सकारात्मक पक्ष को ज्यादा देख पाती हूँ। मन पहले से ज्यादा शान्त रहने लगा, विचारों का जो झुण्ड दिमाग में उथल-पुथल करता था वह लगभग आधा हुआ। पहले छोटी-छोटी बातें बुरी लग जाती थीं, भावुकता ज्यादा थी पर अभी धीरे-धीरे उस पर भी नियंत्रण है। किसी की कही हुई बुरी-से-बुरी बात कुछ घंटों के बाद गायब हो जाती है, मानो वह घटना मेरे जीवन में घटी ही नहीं। हमेशा मैं भूतकाल से भी ज्यादा भविष्य का सोचती थी, पर अभी वर्तमान में बहुत हद तक जीना सीख लिया। दिवस समीक्षा करने के पश्चात् अपने अन्दर की कमियों का पता चलना शुरू हुआ और उनमें सुधार कैसे किया जाए इनका उत्तर भी मिलना शुरू हुआ, वह भी स्वयं से। कुछ रिश्तों के प्रति कई वर्षों से कुंठा थी और वे सम्बन्ध बहुत ही खराब थे। लेकिन

यहाँ पर एक भाव आया कि उन रिश्तों को बिगाड़ने वाली मैं ही थी। सबसे बड़ी क्षमता विकसित हुई अपने अन्दर कमी देखना, दूसरों में नहीं।

हठयोग कक्षा में आसनों को सही रूप से करना पता चला। मुद्रा का महत्त्व और प्राणायाम का सही तरीका मालूम चला। हठयोग का वास्तविक स्वरूप मुझे पहली बार मिला, जिसका प्रभाव यह है कि प्राणों और नाड़ियों के प्रति मेरी सजगता बढ़ी। राजयोग के सभी अभ्यासों का मेरे व्यक्तित्व पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा, मेरा चिड़चिड़ापन व गुस्सा करना बहुत कम हुआ तथा अपनी बीमारियों का मूलकारण मनोकायिक है यह समझने में सहयोग मिला। योगनिद्रा से मेरे शरीर में जो आलस्य रहता वह भी दूर हो जाता और मैं एकदम तरो-ताजा हो जाती। आश्रम जीवनशैली में रहकर यह जाना कि हर पल यौगिक है, हर क्षण कुछ-न-कुछ सीखने को मिल रहा है।

– सुचिता त्रिपाठी, कानपुर

सितम्बर 2015 में सत्यानन्द योग केन्द्र, जबलपुर से जुड़ना मेरे जीवन में एक 'यू टर्न' के समान रहा। तब से मेरे अन्दर मुंगेर आश्रम आने की इच्छा दिन-प्रतिदिन बलवती होती गई और आश्रम में प्रवेश ऐसा रहा मानो मेरा दूसरा जन्म हुआ हो। स्वामीजी के दर्शन और उनके कहे शब्द और ऊर्जामयी मुस्कान हर पल मेरे अंदर दुगुनी ऊर्जा और आनन्द संचारित करते गए। सेवा कार्य को मैंने हर पल अपनी जिम्मेदारी समझकर किया। योग विद्या की दोनों कक्षाएँ, चाहे हठयोग की रही हों या राजयोग की, जीवन की दशा और दिशा परिवर्तित करने वाली थीं। शिक्षकों का कटिबद्ध प्रयास हर पल हमें स्वयं का अध्ययन करने की प्रेरणा देता गया। जहाँ पर भी थोड़ा समय मिला, जिस-जिस संन्यासी के पास खड़े हुए, सभी ने कुछ-न-कुछ सिखाया, पढ़ाया, प्यार दिया, सम्मान दिया। सब कुछ अंकित हो गया है चित्त के आकाश में। मन लगाकर सेवा कार्य करना, शिक्षकों की उम्मीद अनुसार शिक्षा ग्रहण करना, भक्ति साधना में डूबकर आनन्द उठाना–इन सबसे रोशनी की किरण नजर आ गई है, कदम बढ़ चुके हैं, और मुझे विश्वास है कि मंजिल निश्चित पाऊँगी।

– सुषमा केसरवानी, जबलपुर

आज भी मुझे वह दिन याद है जब मैंने इस आश्रम में कदम रखा था। असीम शान्ति और नि:स्तब्धता का अनुभव हुआ जो बाहरी वातावरण के एकदम विपरीत था। आश्रम की सकारात्मक ऊर्जा मुझे पहले ही दिन से अनुभव हुई और इससे मुझमें वाकई बहुत बदलाव आए। यहाँ आकर मैंने कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग के बारे में जाना। आश्रम में हर जगह श्री स्वामीजी के लिखित विचार बहुत ही

प्रेरणादायक हैं। शुरुआती दिनों में मुझे सुन्दरकाण्ड पाठ में बैठने में कोई रुचि नहीं होती थी, पर जैसे-जैसे दिन बढ़ते गए मेरे शरीर के भीतर हृदय के समीप न जाने कैसे एक स्पन्दन होने लगता। एक प्रकार से मैं यह कह सकता हूँ कि पहले जो शरीर अन्दर से संवेदनहीन था अब उसमें एक अनुभव होता है जिसका शब्दों में वर्णन कर पाना नामुमकीन है।

कर्मयोग से मेरा आलस्य भी छूटा और दिल की अशुद्धियाँ भी साफ हुईं। कर्मयोग के दौरान मन:प्रसाद और प्रतिपक्ष भावना को कायम रखना चुनौतिपूर्ण रहा, पर मुझे इंसानियत की बहुत सीढ़ियों से गुजार दिया। आश्रम जीवन ने मेरा पूरा व्यक्तित्व बदल दिया है, मैं अब एक बेहतर व्यक्ति हूँ पहले की तुलना में। दया, करुणा, बिना किसी अपेक्षा के सहायता और सेवा करना, प्रतिपक्ष भावना को लागू करना– ये जीवन में बहुत ही कारगार उपाय हैं। मैं अपने सभी शिक्षकों का आभारी हूँ जिन्होंने बहुत ही अच्छी तरह से कक्षा में सब कुछ सिखाया और हमारे प्रश्नों के उत्तर दिए। राजयोग कक्षा में बताई गईं विधियाँ जैसे स्वान और दिन की समीक्षा वाकई में लाभदायक रहीं जिनसे मुझमें आंतरिक स्पष्टता आई है। मेरा यहाँ आने का केवल एक ही उद्देश्य था और वह था स्वयं को जानना। मैं खुश हूँ कि स्वयं को जानने के साथ-साथ मैं एक बेहतर इन्सान भी बन पाया। मुझे एक अच्छा इन्सान बनाने के लिए आप सबका धन्यवाद।

– गौरव पाल, इन्दौर

ध्यान और स्वास्थ्य

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

ध्यान में गहन शारीरिक और मानसिक विश्राम मिलता है, जिसकी अनुभूति हममें से कुछ लोगों को निद्रावस्था में भी होती है। अत: ध्यान द्वारा अनेक बीमारियाँ दूर की जा सकती हैं, अपूर्व स्वास्थ्य-लाभ किया जा सकता है।

इस पर विचार-विमर्श करने के पूर्व हम शरीर और मन के अटूट पारस्परिक सम्बन्ध को समझ लें। युगों से यह माना जा रहा था कि शारीरिक व्याधि का मन से कोई वास्ता नहीं और मानसिक व्याधि का शरीर से कोई सम्बन्ध नहीं है। हाल ही में दोनों के बीच के घनिष्ठ आन्तरिक सम्बन्ध को मान्यता दी गयी है। वास्तव में ये दोनों मिलकर एक ही इकाई हैं। मानसिक विश्राम से शरीर की थकान कम होती है और शारीरिक विश्राम से मन की, यह तो लोगों ने प्राय: स्वयं अनुभव किया होगा। अत: यह स्पष्ट है कि किसी भी रोग का कारण निश्चित रूप से मन और शरीर, दोनों ही से सम्बन्धित है और दोनों के संतुलित इलाज से ही रोग-निवारण सम्भव है।

रोग-निवारण के लिए दवाओं द्वारा किए जाने वाले इलाज की अपेक्षा ध्यान अधिक समग्र एवं सम्पूर्ण विधि है। दवाओं से जो उपचार होते हैं उनसे किसी अंग विशेष के रोग दूर हो सकते हैं तथा शरीर के दूसरे अंगों पर उनका दुष्प्रभाव भी पड़ सकता है, जिसके कई उदाहरण भी दिए जा सकते हैं। पर ध्यान की परिधि में सम्पूर्ण व्यक्तित्व को लिया जाता है। ध्यान द्वारा उपचार की डोर रोगी के हाथ में आ जाती है। रुग्ण व्यक्ति में ध्यान द्वारा वह क्षमता आ जाती है जिससे वह रोग से लड़ सकने में समर्थ हो जाता है। यह उपचार मन और शरीर से एक साथ सम्बन्ध रखेगा। ध्यान द्वारा मन को रोगों को दूर करने का प्रशिक्षण दिया जा सकता है। लेकिन सबसे पहले तो ध्यान की विधि जानकर मन और शरीर पर नियंत्रण रखने की कला सीखनी होगी। जब व्यक्ति अपने मन तथा शरीर की आन्तरिक गतिविधियों के प्रति सजग हो जाता है, तब वह अपनी ऊर्जा तथा शक्ति को आवश्यकतानुसार दिशा प्रदान कर सकता है। रोगग्रस्त व्यक्ति ध्यान के अभ्यास से अपनी आन्तरिक ऊर्जा को बीमार अंग की ओर दिशान्तरित करने की कला सीख जाएगा।

ध्यान के शारीरिक प्रभाव

ध्यान शारीरिक क्रिया-कलापों के नियंत्रण का सबसे सशक्त उपाय है, साथ ही मानसिक क्रियाओं तथा घटनाओं के कारण हो रही शारीरिक प्रतिक्रियाओं के नियंत्रण का भी यह सशक्त माध्यम है। ध्यानावस्था में शरीर पर होने वाला सबसे गहरा परिवर्तन है—चयापचय की गति का मन्द पड़ जाना। ऑक्सीजन की

आवश्यकता एवं कार्बन-डाइऑक्साइड की उत्पत्ति, दोनों में ही कमी आ जाती है। प्रयोगों से पता लगा है कि ऑक्सीजन व्यय में 20% तक कमी आ जाती है, क्योंकि श्वसन की गति धीमी पड़ जाती है। चयापचय की गति के मन्द पड़ जाने का कारण है स्वचालित स्नायु संस्थान पर ध्यान के अभ्यास द्वारा प्राप्त नियंत्रण।

रक्तचाप पर ध्यान का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। यह ध्यानावधि में और उसके बाद भी सामान्य से नीचे गिर जाता है। इसलिये उच्च रक्तचाप से पीड़ित व्यक्तियों के लिये तो ध्यान विशेष लाभदायक उपचार है। हृदय गति भी अधिक स्वस्थ ढंग से चलने लगती है। रक्त संस्थान से सम्बन्धित एक और रोचक तथ्य यह है कि ध्यान के अभ्यास से रक्त प्रवाह भी बढ़ जाता है। इसे समझने के लिये हम स्वचालित स्नायु संस्थान की ओर पुन: देखें, विशेष रूप से अनुकम्पी स्नायुजाल। ये स्नायुओं के जाल रक्तवाही नाड़ियों को संकुचित करते हैं, जिससे रक्त का संचार प्रभावित होता है। जितना अधिक संकुचन होगा, रक्त प्रवाह उतना ही कम होगा। ध्यान की अवस्था में अनुकम्पी स्नायु संस्थान की गति धीमी हो जाती है, फलत: रक्तवाही नाड़ियों का संकुचन कम हो जाता है तथा रक्त संचार की गति बढ़ जाती है।

साधक के लिए यह बढ़ा हुआ रक्त संचार अत्यन्त लाभदायक है। उदाहरणार्थ, लैक्टेट के उत्पादन को ही लें, जो मांसपेशियों में ऑक्सीजन की कमी के कारण होता है। मांसपेशियाँ जितनी अधिक क्रियाशील होती हैं इसका स्रवण, संचयन उतना ही अधिक होता है, क्योंकि ऑक्सीजन से प्राप्त शक्ति से अधिक शक्ति मांसपेशियाँ खर्च कर देती हैं। लैक्टेट का उत्पादन शक्ति की इस कमी को पूरा करने के लिए होता है।

विश्राम के समय लैक्टेट अन्य तत्त्वों में विखण्डित हो जाता है, क्योंकि मांसपेशियों को पर्याप्त मात्रा में ऑक्सीजन प्राप्त होने लगती है। ध्यान में बढ़ते हुए रक्त संचार के फलस्वरूप मांसपेशियों को अधिक ऑक्सीजन मिलनी निश्चित है, अत: लैक्टेट का शीघ्रता से क्षय होने लगता है। आपको इस बिन्दु पर ध्यान देना चाहिए कि ध्यान में वास्तव में कम ऑक्सीजन ग्रहण की जाती है, पर मांसपेशियों को उपलब्ध ऑक्सीजन का वितरण अधिक होता है, जो लैक्टेट को तोड़ देता है। साथ ही, उपचयन की क्रिया में कोषाणु कम ऑक्सीजन ग्रहण करते हैं। लैक्टेट का उत्पादन अनुकम्पी स्नायु संस्थान द्वारा उद्दीप्त होता है। ध्यान में इस अनुकम्पी स्नायु संस्थान के निष्क्रिय हो जाने से लैक्टेट की उत्पत्ति भी कम हो जाती है।

लैक्टेट के उत्पादन के विषय को इतना महत्त्व इसलिए दिया जा रहा है कि औषध विज्ञान के शोधों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि चिन्ता, मानसिक रोग, तनाव आदि से पीड़ित लोगों में लैक्टेट की मात्रा, शांत स्थिति में रहने वाले लोगों की अपेक्षा ज्यादा पायी जाती है। वैज्ञानिक शोध के दौरान जिस व्यक्ति के शरीर में लैक्टेट बाहर से डाला गया, वह चिन्ताग्रस्त हो उठा। साथ ही नियमित रूप से ध्यान करने वाले तथा सामान्य रक्तचाप वाले व्यक्तियों की अपेक्षा उच्च रक्तचाप वाले व्यक्ति में इसकी मात्रा ज्यादा रहती है।

लैक्टेट की मात्रा कम करने का सर्वोत्तम उपाय है, ध्यान। इससे रक्तचाप स्वत: सामान्य हो जायेगा और सभी प्रकार की चिन्तायें कम हो जायेंगी। चिन्ता स्वयं अनेक शारीरिक एवं मानसिक रोगों का मूल कारण है। अत: रोग मुक्ति के अनेक प्रचलित उपायों में ध्यान सर्वोत्तम उपाय है। इससे रोगों का जड़ से निदान होता है, मात्र ऊपरी लक्षणों का नहीं।

इन शारीरिक परिवर्तनों के साथ विश्राम की अन्य विधियों, जैसे, निद्रा और सम्मोहन का क्या साम्य है? कहना चाहिये कि कोई साम्य नहीं, क्योंकि सम्मोहन में चयापचय की मात्रा में बहुत कम अथवा कोई अन्तर नहीं आता। निद्रा में कुछ घंटों के बाद शारीरिक परिवर्तन प्रारम्भ होते हैं। निद्रावस्था में कार्बन-डाइ-ऑक्साइड का विशेष संचयन रक्त में पाया जाता है, जबकि ध्यानावस्था में रक्त में ऑक्सीजन तथा कार्बन-डाइ-ऑक्साइड का अनुपात (मात्रा नहीं) निरन्तर एक समान बना रहता है।

संघर्ष अथवा पलायन हेतु शरीर का रक्षा यंत्र

शरीर में संघर्ष अथवा पलायनवादी रक्षा प्रणाली का भार अनुकम्पी स्नायु संस्थान और एड्रीनल ग्रन्थियों पर है। ये दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। तनाव, भय, विपत्ति आदि की स्थिति में एड्रीनल ग्रन्थि एक रस स्रावित करती है, जिसे एड्रीनलिन कहते हैं। यह रस शरीर को संघर्ष या पलायन के लिये तैयार करता है। यह हृदय गति, श्वसन गति एवं दृष्टि, श्रवण आदि इन्द्रियों की ग्रहणशीलता को बढ़ाकर तथा पाचन क्रिया को रोककर सारी शक्ति एक ओर लगा देता है, ताकि व्यक्ति इस शक्ति से अचानक आए हुए खतरे का सामना कर सके। यह व्यवस्था थोड़े समय ठहरने वाली विपत्तियों के लिए है। जो विपत्तियाँ देर तक ठहरने वाली हैं, उनका सामना करने के लिये अनुकम्पी स्नायु संस्थान ही क्रियाशील रहता है और वह शरीर को अधिकाधिक गतिशील बनाये रखता है। धीरे-धीरे जब संकट समाप्त हो जाता है तब शरीर की क्रियायें पुन: सहज तथा स्वाभाविक ढंग से चलती हैं।

आधुनिक जीवन-पद्धति इतनी कठिनाइयों से भरी हुई है कि अधिकतर लोगों को सदा ही संघर्ष अथवा पलायन के लिये तनावयुक्त स्थिति में रहना पड़ता है। इसका कारण अपने अधिकारी का डर, मित्रों तथा पड़ोसियों के समक्ष सम्मान खोने, किराये एवं खर्चों के सभी बिल न चुका पाने इत्यादि का डर हो सकता है। इस स्थिति में व्यक्ति सदा तनावयुक्त तथा बदलती हुई मन:स्थिति में रहता है। निरन्तर असंतोष और क्षोभ की ऐसी स्थिति में रहते हुए व्यक्ति अपनी रोग-प्रतिरोधक क्षमता भी खो बैठता है।

बहुत-से लोग सोचते हैं कि वे अपने जीवन में अधिकतर विश्रान्त रहते हैं। कुछ लोगों के लिए यह बात सत्य हो सकती है, परन्तु वैज्ञानिक परीक्षणों का निष्कर्ष बतलाता है कि अधिकतर लोग निरन्तर तनावयुक्त रहते हैं, यद्यपि वे इसके प्रति सजग नहीं होते। विभिन्न तनावपूर्ण परिस्थितियों के प्रतिक्रिया स्वरूप, चाहे वे तृणवत् तुच्छ ही क्यों न हों, वे मांसपेशियों को तानने, आँखें झपकाने या नाखून कुतरने लगते हैं। ये क्रियाएँ आदतन इतने सहज तथा स्वाभाविक ढंग से होती हैं कि करने वाले को भी यह जानकारी नहीं रहती कि वह ऐसी प्रतिकारात्मक क्रियाएँ कर रहा है।

आदतन होने वाली ये नगण्य-सी प्रतिकारात्मक क्रियायें मनोकायिक व्याधियों की पूर्व-सूचना देती हैं। जब व्यक्ति जाने-अनजाने इन तनावों को अभिव्यक्त करता है, तो वह वास्तव में अपने को संघर्ष अथवा पलायन के लिए तैयार कर रहा होता है। यह प्रतिक्रिया अनुकम्पी स्नायु संस्थान तथा एड्रीनल ग्रन्थियों के द्वारा होती है। इन क्रियाओं का बाह्य स्वरूप छोटा और नगण्य होता है, परन्तु यदि जाँचा जाय तो पता लगेगा कि ऐसे व्यक्तियों की हृदयगति, श्वसन क्रिया आदि में आन्तरिक रूप से परिवर्तन हो रहा होता है। एड्रीनल ग्रन्थि एवं अनुकम्पी स्नायु संस्थान की लम्बे समय तक उत्तेजना धीरे-धीरे उन्हें उच्च रक्तचाप, अल्सर, मधुमेह, थ्रौम्बोसिस

के साथ-साथ अनेक मानसिक रोगों तथा पीठ-दर्द, त्वचा सम्बन्धी समस्याओं, पेशीय ऐंठन तथा इस प्रकार के बहुत से दूसरे रोगों की ओर ले जा रही होती है।

इनसे मुक्ति पाने का एकमात्र निश्चित उपाय है, प्रतिदिन सम्पूर्ण शरीर व मन को पूरी तरह नियत विश्राम देना। निद्रा निश्चय ही विश्राम की एक सामान्य स्थिति है, पर कुछ लोग इतने तनावपूर्ण होते हैं कि नींद में भी तनावरहित नहीं हो पाते। वे लोग नींद में भी अपनी दैनिक समस्याओं को सुलझाने का प्रयास कर रहे होते हैं। एड्रीनल ग्रंथि एवं अनुकम्पी स्नायु संस्थान के अतिशय उपयोग से शरीर में जो क्षति होती है उसकी पूर्ति तथा पुनर्संतुलन की स्थापना निद्रा पर्याप्त रूप से नहीं कर पाती। गहन शिथिलीकरण के बाद ही क्षतिपूर्ति होती है और शरीर की आंतरिक क्रियाएँ पुन: सामान्य हो पाती हैं। ध्यान से यह संभव है। एक अर्थ में ध्यान एड्रीनल ग्रंथि तथा अनुकम्पी स्नायु संस्थान के प्रभावों को संतुलित करता है। आधुनिक जीवन के लिए यह रामबाण है। यह मनुष्य के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य का सर्वोत्तम साधन है।

हम केवल शिथिलीकरण की नहीं, अपने वातावरण के प्रति अपनी प्रतिक्रिया बदलने की भी कला सीखें। वातावरण से भीति नहीं, प्रीति रखकर ही हम आनन्द

पा सकते हैं। शरीर एवं मन की व्यवस्था में हमें नये कार्यक्रम लागू करने होंगे, ताकि प्रत्येक संभावित परिस्थिति में रक्त में एड्रीनलीन का स्राव न हो, हमारी प्रतिक्रिया भिन्न हो, हम शिथिल तथा विश्रान्त हो सकें, प्रसन्न रहें और चेतना के स्तर को ऊँचा उठा सकें।

मन का परिवर्तन कितना महत्त्वपूर्ण है, इसे समझाने के लिए मस्तिष्क की उस क्रियाविधि का संक्षिप्त वर्णन देता हूँ जो हमारी तनावयुक्त या विश्रान्त स्थिति से सम्बन्धित है। मस्तिष्क का एक मुख्य भाग लिम्बिक संस्थान है, जो मस्तकदण्ड के शीर्ष पर अवस्थित है। इसका मुख्य कार्य है ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त संवादों को मस्तिष्क में संचित पूर्व अनुभवों से मिलाना। दूसरे शब्दों में लिम्बिक संस्थान इन्द्रियों से प्राप्त नए संवादों की तुलना हमारे मस्तिष्क में संचित सभी स्मृतियों से करता है और इन पूर्व अनुभवों के आधार पर उनका विश्लेषण करता है।

यदि अनुभव नये हैं और मस्तिष्क की धारणाओं तथा स्मृतियों से मेल नहीं खाते तो लिम्बिक संस्थान उनके प्रति हमारी भावनात्मक प्रतिक्रियाओं को गहन बना देता है। इसलिए जब हमारे साथ कुछ अनपेक्षित घटित होता है या हमें अपने पूर्व अनुभवों से भिन्न कोई अनुभव होता है, तो लिम्बिक संस्थान तुरंत क्रोध, तनाव आदि भावनात्मक प्रतिक्रियाओं को जन्म देता है। फलस्वरूप एड्रीनल ग्रन्थि से रक्त में एड्रीनलिन का स्राव अधिक होता है और हममें क्रोध या विपत्ति संरक्षण सूचक प्रतिक्रियाएँ होने लगती हैं, जिससे सारे शरीर में तनाव व्याप्त हो जाता है, रक्त प्रवाह, हृदय की गति और श्वसन क्रिया तीव्र हो जाती हैं। आधुनिक युग के अधिकतर लोग अपना जीवन ऐसे ही व्यतीत करते हैं और लम्बे समय तक बना रहने वाला यह तनाव उन्हें अनेक प्रकार के रोगों का शिकार बना देता है।

मस्तिष्क के इसी संस्थान का एक हिस्सा, जिसे पटीय क्षेत्र कहते हैं, दूसरी दिशा में कार्य करता है। यह हमारी भावनात्मक प्रतिक्रियाओं को घटाकर तनाव कम कर देता है। ऐसे में मन और शरीर को शिथिलता की अनुभूति होती है। ध्यान द्वारा जीवनभर हम लिम्बिक संस्थान के पटीय क्षेत्र के हाथ में बागडोर थमाये रख सकते हैं। इन अवस्थाओं में हम रोग-मुक्त तथा निश्चिन्तता की स्थिति में रहते हैं, आलस्य में नहीं। हम अधिक दक्षता से कार्य कर सकते हैं।

जो निश्चिन्त, आनन्दमय जीवन की आकांक्षा रखते हैं, उन्हें दूसरे का नहीं, अपना मन बदलना है। अपने मन तथा बाहरी दुनिया के प्रति उसकी प्रतिक्रियाओं को बदलकर ही स्वस्थ तथा सुख-शान्ति से परिपूर्ण जीवन की प्राप्ति होती है। मन को बदले बिना संसार में सुख खोजना मृगतृष्णा है। यदि रोगमुक्त स्वस्थ जीवन चाहिये तो आप ध्यान करें और अपने मन को एक नई दिशा दें। कष्ट से मुक्ति पाने के लिए अपनी उन मानसिक धारणाओं को बदलें जो आपके पालन-पोषण के समय गलती से आपके मस्तिष्क में भर दी गई थीं, क्योंकि वे ही आपकी अप्रसन्नता का मूल कारण हैं।

तुल्य-निंदा-स्तुति

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

गीता के बारहवें अध्याय में भक्तों के लक्षण बताते हुए भगवान श्रीकृष्ण *तुल्यनिन्दास्तुति: शब्द* का प्रयोग करते हैं, अर्थात् जिसके लिए निन्दा और स्तुति समान हों। जो व्यक्ति स्तुति से, प्रशंसा से प्रसन्न हो जाए, वह क्या भक्ति कर सकेगा? निन्दा या स्तुति का असर एक घमण्डी या अहंकारी व्यक्ति पर ही पड़ता है। एक आदमी भगवान् बुद्ध के पास गया और उन्हें अनगिनत गालियाँ दीं। भगवान् बुद्ध निश्चल, सहज भाव से बैठे रहे, गालियाँ सुनते रहे। जब गालियाँ बन्द हो गयीं, तब बुद्ध उस व्यक्ति से प्रश्न करते हैं कि यदि तुम किसी को उपहार दो और वह उसे स्वीकार नहीं करे तो तुम क्या करोगे? आदमी कहता है कि वह सामान वापस ले लूँगा, मैं खुश हो जाऊँगा कि मेरी चीज मेरे पास ही रह गयी। तब बुद्ध ने कहा कि जो गालियों का उपहार तुमने मुझे दिया है, वह मैं तुम्हें वापस कर रहा हूँ।

बुद्ध का यह उदाहरण सटीक है। निन्दा से आदमी के अहंकार को, घमण्ड को चोट पहुँचती है और स्तुति से उसके अहंकार तथा घमण्ड में वृद्धि होती है। जिन्दगी में ऐसे बहुत अवसर आते हैं। अगर हम अपनी निन्दा सुनते हैं, तो उसकी प्रतिक्रिया होती है। हम निन्दक पर क्रोध करते हैं। इस क्रोध का परिणाम होता है कि हम उसे नीचा दिखाने का प्रयास करने लगते हैं। निन्दा या स्तुति को केवल सुनना नहीं, बल्कि अन्दर में जो प्रतिक्रिया उत्पन्न हो रही है, जो विचार तथा जो भावना उत्पन्न होती है, उसे देखना भी है।

निन्दा और स्तुति, शिकायत और तारीफ, दोनों को देखो, दोनों में समभाव रखो। निन्दा से क्रोध और क्रोध से प्रतिकार की भावना उत्पन्न होती है। प्रशंसा से अनुराग और अनुराग से आसक्ति उत्पन्न होती है। इन दोनों अवस्थाओं को देखकर स्वयं को संयत रखना है।

अनुराग से आसक्ति और प्रत्युपकार की भावना एक अच्छाई है, उसे एक मानवीय गुण की संज्ञा भी दी गयी है। अगर इसे मानवीय गुण मानकर चलें तो ठीक है, लेकिन जहाँ इसकी आसक्ति के चक्कर में पड़ जायें, वहाँ भक्त के जीवन में यह बन्धन के रूप में प्रकट हो जाता है। फिर हमारे विचार, कर्म और व्यवहार प्रभु के निमित्त नहीं होते, बल्कि उनमें एक दूसरी भावना जुड़ जाती है। इसलिये लौकिक दृष्टि से प्रत्युपकार की भावना को एक गुण के रूप में समझें, देखें और इसे एक सीमा से आगे न बढ़ने दें, जहाँ जाकर यह एक बन्धन का रूप ले ले।

यह तो संसार की रीति है। कभी प्रशंसा होती है, कभी चोट लगती है। इसके कारण अगर हम अपने विचारों को, कर्मों को बदलते रहें, तो हम न इस घाट के न

उस घाट के। एक बार एक वृद्ध व्यक्ति अपने युवा पुत्र के साथ एक गाँव से दूसरे गाँव जा रहा था। उनका एक घोड़ा भी साथ था। पिता ने अपने पुत्र से कहा, 'देखो, रास्ता बहुत लम्बा है, मैं तो जिन्दगीभर पैदल चला हूँ। मुझे तो चलने की आदत है, तुमको चलने की आदत नहीं है, थक जाओगे। अत: तुम घोड़े पर चढ़ जाओ।' पुत्र घोड़े पर चढ़ जाता है और पिता घोड़े की लगाम थामे आगे-आगे चलने लगता है।

थोड़ी देर बाद रास्ते में अगल-बगल कुछ गाँव मिलते हैं। कुछ ग्रामीण टिप्पणी करते हैं कि देखो तो सही, एक जवान आदमी घोड़े पर चढ़कर जा रहा है और एक बूढ़ा पैदल चल रहा है। जवान के दिल में थोड़ी भी दया नहीं है कि वह बूढ़े को घोड़े पर बिठा ले और स्वयं पैदल चले। ये बातें पुत्र को सुनायी दीं। उसने पिता से कहा, 'पिताजी, आप घोड़े पर चढ़ जाइये, मैं पैदल चलता हूँ।' वे ऐसा ही करते हैं। थोड़ी दूर जाने के बाद फिर कोई टिप्पणी करता है कि देखो न, कितना सुकुमार बालक है और उसका पिता कितना निर्दयी है, स्वयं शान से घोड़े पर बैठकर जा रहा है और अपने सुकुमार बेटे को पैदल चला रहा है। बेचारा लड़का थक गया होगा। तब पिता और पुत्र आपसी वार्ता के पश्चात् एक साथ घोड़े पर चढ़ जाते हैं। कुछ लोगों ने फिर टिप्पणी की कि ये कैसे लोग हैं, घोड़े की जान का तनिक भी ख्याल नहीं करते, दो-दो व्यक्ति घोड़े पर सवार हो गये हैं। तब वे दोनों घोड़े से उतर गये। इस प्रकार की घटना तो जीवन में हमेशा घटती ही रहती है।

यदि कोई लोक-निन्दा से बचने का प्रयास करे, तो यह उसकी बेवकूफी होगी। लेकिन समभाव को धारण कर अगर मनुष्य सही प्रकार का आचरण करता रहे, तो वह समभाव उसके लिए ढाल का काम करता है। संसार द्वारा फेंके गये पत्थर-कीचड़ को रोकने में वह समर्थ होता है। चिन्तनशील होकर, निन्दा तथा स्तुति के सकारात्मक या नकारात्मक, सुख से पूर्ण या दु:ख से पूर्ण प्रभावों को अपने पास मत फटकने दो। इसी को कहते हैं लोक-व्यवहार। निन्दा-स्तुति में समान रहना लोक-व्यवहार है, धर्माचरण है। जहाँ तक निन्दा और स्तुति का सवाल है, कोई इससे अछूता नहीं रहा है। निन्दा-स्तुति में समभाव को धारण कर, चिन्तन कर, इनके प्रभावों से मुक्त रहो।

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

रोग और योग

डॉ. स्वामी कर्मानन्द सरस्वती

पृष्ठ 302, ISBN: 978-81-86336-12-0

इस पुस्तक में ऐसे 36 सामान्य एवं गंभीर रोगों का समाधान प्रस्तुत किया गया है, जिन्होंने मानवता को चिरकाल से पीड़ित कर रखा है। बीमारी के मूल सिद्धान्त को आधुनिक चिकित्सा प्रणाली एवं यौगिक चिकित्सा प्रणाली, दोनों के परिप्रेक्ष्य में समझाया गया है। प्रत्येक बीमारी के लिए आधुनिक उपचार, आहार सम्बन्धी सुझाव तथा अन्य सुझावों के साथ-साथ उसकी योग चिकित्सा पर भी गहराई से प्रकाश डाला गया है। यह पुस्तक योग द्वारा बीमारियों के निवारण तथा पुनर्स्वास्थ्य की उपलब्धि के लिए एक उत्तम मार्गदर्शिका है।

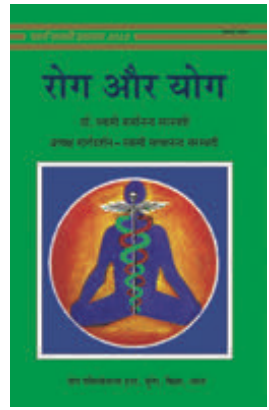

उपलब्ध

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें–

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201

दूरभाष : 91-6344-222430, 6344-228603 फैक्स : 91-6344-220169

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा।

वेबसाइट और एप्प

SATYANANDA YOGA
BIHAR YOGA

www.biharyoga.net

बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट पर सत्यानन्द योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती तथा योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

सत्यम् योग प्रसाद

www.satyamyogaprasad.net वेबसाइट पर तथा Android एवं iOS उपकरणों पर एप्प के रूप में उपलब्ध

मुंगेर योग संगोष्ठी 2018 के अवसर पर स्वामी सत्यानन्द जी एवं स्वामी निरंजनानन्द जी की समस्त प्रकाशित कृतियाँ ऑनलाइन प्रस्तुत की जा रही हैं।

बिहार योग विकी

www.yogawiki.org

मुंगेर योग संगोष्ठी 2018 के अवसर पर ऑनलाइन विश्वकोश प्रस्तुत किया जा रहा है जहाँ सभी साधकों के लिए यौगिक शिक्षाएँ सुगम रूप में उपलब्ध होंगी।

योगा एवं योगविद्या ऑनलाइन

www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ Android एवं iOS उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

अन्य एप्प (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)

- योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की लोकप्रिय पुस्तक, *ए.पी.एम.बी.* अब सुविधाजनक एप्प के रूप में उपलब्ध है।
- *बिहार योग एप्प* साधकों के लिए प्राचीन और नवीन यौगिक ज्ञान आधुनिक ढंग से पहुँचाता है।

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. MGR-01/2017
  Office of posting: Ganga Darshan TSO
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

यौगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2019-2020

अक्टूबर 1-30	बिहार योग शिक्षकों के लिए प्रगतिशील प्रशिक्षण 1, 2 (अंग्रेजी)
नवम्बर 7- जनवरी 25	त्रिमासिक योग अध्ययन (अंग्रेजी)
नवम्बर 4-10	क्रिया योग यात्रा 1 एवं 2
नवम्बर 11-17	क्रिया योग यात्रा 3
दिसम्बर 18-22	योग चक्र शृंखला (अंग्रेजी)
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस
जनवरी 27-29	श्री यंत्र आराधना
जनवरी 30	बसंत पंचमी महोत्सव, बिहार योग विद्यालय का स्थापना दिवस
फरवरी 9-13	योग कैप्सूल-श्वास सम्बन्धी (हिन्दी)
फरवरी 9-13	योग कैप्सूल-गठिया सम्बन्धी (हिन्दी)
फरवरी 14	बाल योग दिवस
फरवरी 23-27	योग कैप्सूल-पाचन सम्बन्धी (हिन्दी)
फरवरी 23-29	पूर्ण स्वास्थ्य कैप्सूल (हिन्दी)
फरवरी-मार्च	द्विमासिक यौगिक अध्ययन (हिन्दी)
मार्च 14-20	हठ योग यात्रा 1 एवं 2
अप्रैल 1-30	एकमासिक योग प्रशिक्षण (हिन्दी)
अप्रैल 4-8	योग जीवनशैली कैप्सूल (हिन्दी/अंग्रेजी)
अप्रैल 13-19	राज योग यात्रा 1 एवं 2
सितम्बर 19-25	राज योग यात्रा 1 एवं 2
अक्टूबर 1-30	बिहार योग शिक्षकों के लिए प्रगतिशील प्रशिक्षण 1 (अंग्रेजी)
नवम्बर - जनवरी 2021	त्रिमासिक योग अध्ययन (अंग्रेजी)
नवम्बर 2-8	क्रिया योग यात्रा 1 एवं 2
नवम्बर 21-27	हठ योग यात्रा 1 एवं 2
दिसम्बर 2-6	योग जीवनशैली कैप्सूल (हिन्दी/अंग्रेजी)
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस
प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक 4, 5 एवं 6 तारीख	गुरु भक्ति योग
प्रत्येक 12 तारीख	अखण्ड रामचरितमानस पाठ

उपर्युक्त सत्रों/ कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें-

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
फोन : 06344-222430, 06344-228603 फैक्स : 06344-220169
वेबसाइट : www.biharyoga.net

कार्यक्रमों एवं प्रशिक्षणों के आवेदन-पत्र यहाँ उपलब्ध हैं

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु अपना पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।